

# **TIGHT BINDING BOOK**

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_180325**

UNIVERSAL  
LIBRARY







ओम्



एक लोकप्रिय सत्यार्थ पौराणिक नाटक ।

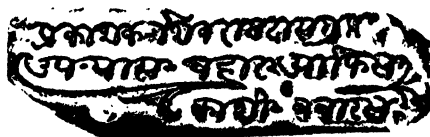


रचयिता —

गौतमबुद्ध, कृष्णलीला, अत्याचार, भक्तसुरामा, विल्वमंगल  
। वेदिंगरुम-ध्रुवलीला इत्यादि के

लेखक —

श्रीयुत बा० आनन्दप्रसादजी कपूर

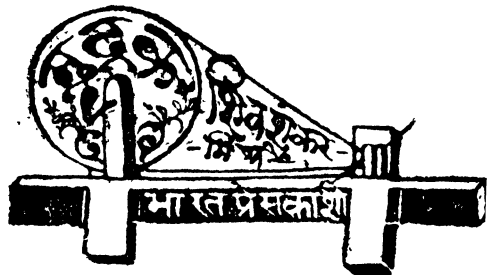


All Rights Reserved.

प्रथम बार १००० ]

[ मूल्य १ ]

नीटकमाला स०

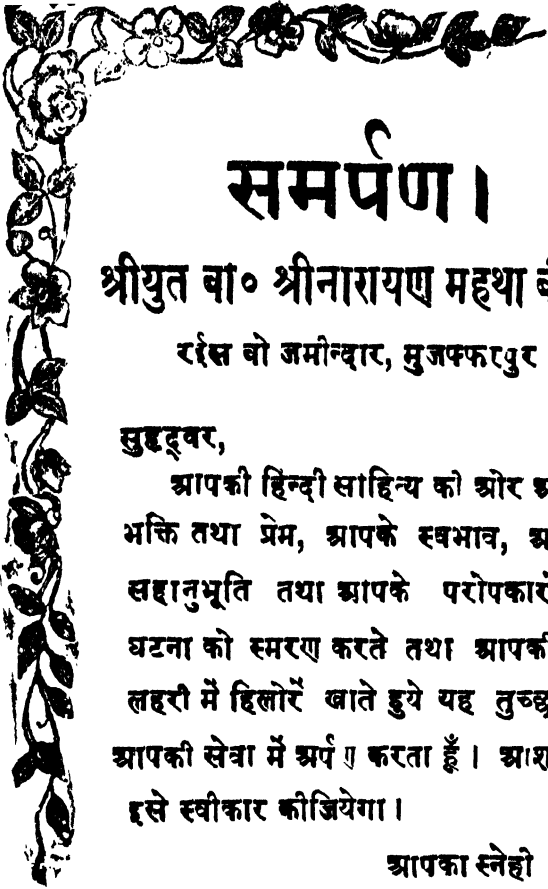


# भूमिका ।

नाटक साहित्य का एक प्रधान अङ्ग है। मनुष्य के चित्त पर आकस्मिक प्रभाव डालनेवाली यदि कोई वस्तु है, तो वह दृश्य कला है। हजारों लोग प्रतिदिन रामायण, महाभारत इत्यादि की कथा सुनकर उतना भाव ग्रहण नहीं कर सकते जितना दृश्य काव्य की कोई घटना को अपनी आँखों से रङ्गमंच पर अवलोकन करते हुये कर सकते हैं। भारतवर्ष में इस कला का पहिले बहुत मान था—बड़े २ ऋषी मुनी इसकी रचना करते थे तथा राज्यवंशीय नर तथा नारी अभिनय में सम्मिलित होकर यथेष्ट भाग लेते थे, परन्तु सब गुणों के साथ हम में इसका भी आलोप हो गया। अब धीरे २ इस ओर भी धुरन्धर विद्वानों तथा विद्वज्जनों की दृष्टि आकर्षित हो रही है। गुरुवर्य ० नारायणप्रसाद बेताब ने महाभारत, रामायण जो हमारे हिन्दूशास्त्र के सर्वोत्तम रत्न तथा उज्ज्वल ग्रन्थ हैं, एवं श्रीहरिकृष्ण जौहर ने पतिभक्ति, वीरभारत इत्यादिनाटक जो हमारी सामाजिक तथा ऐतिहासिक दशा का हमें पूर्ण रूप से अनुभव कराने हैं। लिखकर हमारे मृत शरीरों में संजीवनी बुद्धी प्रदान की है। यह परीक्षित नाटक आप सज्जनों की सेवा में अर्पण है। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि इसमें अनेक दोष होंगे, परन्तु वह जानते हुये भी मैं अपने हाथों से एक लँगड़े लुले अपाहिज नाटक को आप लोगों की सेवा में उपस्थित करने की धृष्टता करता हूँ। यदि यह किसी भी रूप में आप को रुचिकर हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। यह नाटक बहुत पहिले का लिखा हुआ पड़ा था। आज इसके छपकर प्रकाशित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

गढ़वासी टोला  
बनारस सिटी । }

आनन्दप्रसाद कपूर



# समर्पण ।

श्रीयुत बा० श्रीनारायण महथा बी.ए.

रईस बो जमीन्दार, मुजफ्फरपुर ।

सुहृद्वर,

आपकी हिन्दी साहित्य की ओर असीम भक्ति तथा प्रेम, आपके स्वभाव, आपकी सहानुभूति तथा आपके परोपकारों की घटना को स्मरण करते तथा आपकी प्रेम-लहरी में हिलोरें खाते हुये यह तुच्छ कृति आपकी सेवा में अर्पण करता हूँ । आशा है, इसे स्वीकार कीजियेगा ।

आपका स्नेही

आनन्दप्रसाद कपूर ।

---



\* श्रीः \*



सब—

नमन ।

रुद्राणी तनय शरण—

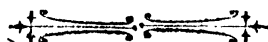
गुणनिधान, दयावान, मुक्तिधाम-विघ्नहरण ॥ रुद्रा०—

जेहि सुमिरत सिध होय, गण नायक करिवर वदन ।

करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन ॥

गरीब निवाज, सुख समाज, भक्तों की रखिये लाज ।

आनंद कर जोरि नमत, लम्बोदर सिन्दूर धरण ॥ रुद्रा०—





### घनघोर जंगल ।

( अश्वत्थामा का अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की धुन में  
 अग्निबाण लिये दिखाई देना )

अश्वत्थामा—प्रतिहिंसा ! तू ऐसी ज्वाला है जो शरीर की रग रग को आग की भट्टी बना देती है । तू ऐसी मदिरा है जो मनुष्यों से नीच से नीच कर्म करा देती है । हा ! समस्त संसार इस समय आनन्द का गीत गा रहा है । सूर्य भगवान् अपनी उसी चमकीली प्रभा से जगत् को अपनी प्रभा दिखला रहे हैं । आकाश भी अपनी स्वच्छता से प्रत्येक प्राणी को प्रफुल्लित बना रहा है । पेड़, पत्ते, चिड़ियोंकी चहचहाहट आदि मन के भीतर अजीब सुरीली विश्व-विमोहिनी तानें सुना रहे हैं । परन्तु मैं ही केवल एक ऐसा अभागा हूँ जो प्रतिहिंसा की ज्वाला से भस्म हुआ जाता हूँ । आह, मेरे हृदयमें यह कैसी भयानक ज्वाला उठ रही है, कैसी आग जल रही है !

द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मारने पर भी पिता की मृत्यु का बदला न पूरा हुआ । अब अभिमन्यु के एक मात्र पुत्र, पाण्डव-कुल के एक मात्र खेवट के डुबाने का विचार उत्पन्न हो रहा है । परन्तु क्यों न हो, पिता की मृत्यु की प्रतिहिंसा क्यों

न मुझे यह कार्य सम्पादन करने के लिए उत्तेजित करे । यह अपने पिता का एक मात्र पुत्र क्यों न पांडवकुल का नाश करे । आज अभिमानी पांडव अश्वमेध यज्ञ में मग्न हैं, उन्हें यह ध्यान नहीं कि अब भी उनका एक शत्रु इस पृथ्वी पर उपस्थित है । आज वह अग्नेयबाण चलाऊँगा कि उत्तरा के गर्भ के बालक को गर्भ ही में नष्ट कर दूँगा—

पता निर्वाण कर दूँगा मैं पांडव की निशानी का ।

गरब सब चूर कर दूँगा युधिष्ठिर धर्म-ज्ञानी का ॥

अर्जुन आज पौत्र के उत्पन्न होने में मग्न होगा, उसे यह ज्ञान नहीं कि थोड़ी देर में एक भारी गहन होगा । ठहर जा, ओ घमण्डी शोशधारी, अब अपने पौत्र को किस उद्योग से बचायेगा, उसे कहाँ छिपायेगा । देखूँगा तेरा ईश्वर वह कृष्ण उसे कहाँ ले जायेगा ।

अब गगन थर्रायेगा और काँप उठेगी मेदिनी ।

धीर अब खोयेंगे वायू वृष्टि घन कादम्बिनी ॥

डगमगायेगी अमरपुरि-देख प्रतिहिंसा अनल ।

और शोणित-धार की बह जायेगी मंदाकिनी ॥

नाश कर मेरे पिता को जो बना चण्डाल है ।

उसके कुल को भस्म करने के लिये शर-ज्वाला है ॥

( अग्नेयबाण का छोड़ना )

( उत्तरा का दूर पर पलंग पर सोते दिखाई देना, दासी का पास में सोई रहना, एका एक दीवार का फट जाना, भीतर से अश्रुत्यामा का छोड़ा हुआ अग्नेयबाण आता है—और जिस पलंग पर उत्तरा सोई है उस पर अग्नि-वर्षा करता है—उत्तरा घबराती है । )

उत्तरा—(सोये २) हैं, यह कैसा चमत्कार, यह कैसा भयानक व्यापार—क्या यह मेरे नन्हें से बालक पर कुछ संकट

लायेगा या इस अग्नि की ज्वाला से सारा घर भस्म हो जायेगा ।  
धाओ धाओ हे दीनानाथ ! धाओ, हे अनाथों के नाथ ! धाओ,  
इस अबला की आखरी आशा आखरी सम्पत्ति बचाओ । जब  
एक ही ढेर पर भक्तों को संकट से छुड़ाया, साड़ियों के ढेर से  
मेरी सास द्रौपदी की लाज को बचाया, तब प्रभु, मेरी विनती  
पर इतना विलंब क्यों लगाया ?

दीन-दयाला कृष्ण-गोपाला क्यों चुप बैठे शीघ्र पधारो ।  
डूब रही संकट-धारा में अंतरयामी बेगि उबारो ॥

(कृष्ण का गरुड़ पर सवार प्रगट होना)

कृष्ण—सावधान ! अर्जुनबधू ! सावधान !  
न घबरा दिल को बश में रख तेरा दुख दूर करता हूँ ।  
जो आया अग्निशर बन के उसे मैं चूर करता हूँ ॥  
( सुदर्शनचक्र चलाते हैं, बाण लोप हो जाता है, दासी

परीक्षित को उठा कर देखती है )

दासी—अहा ! कैसा सुन्दर बालक, कैसी चंद्रकला सी  
कान्ति है और चेहरे पर कैसी शान्ति है !!

रंग रूप में अनूप, चमकत हैं बालभूष ।  
मानो रबि बाल रूप बनके पधारें हैं ॥  
नैन सुन्दर विशाल हैं कपोल लाल लाल ।  
ब्रह्मा ने ऐसे बाल युक्ति सौ सवाँरे हैं ॥  
देखि छवि रूप रंग, पुलकित अंग अंग ।  
ऋद्धि सिद्धि बसे संग अर्जुन के प्यारे हैं ॥  
आनंद-मगन होत चमकत बाल जोत ।  
सुख की है नींद सोत तनमन सब बारे हैं ॥

उत्तरा—( लेटे २ ) सखियो ! क्या तुमने कुछ देखा ?

१ दासी०— कुछ भी नहीं राजकुमारी !

भूमी थी आँख खुलने पर ये शिशु-धन गोद में पाया ।

मगन मन हो रहा है उत्तरा रानीने सुत जाया ॥

उत्तरा—(स्वगत) प्रभो ! आपकी लीला का पार किसी ने नहीं पाया । (प्रगट) सखियो ! आज एक चमत्कार से मैंने एक महा गूढ़ मंत्र पाया ।

२ दासी— वह क्या ?

उत्तरा—यही कि संकट लाख हो, पर यदि सहायक दीना-नाथ होंगे तो बेड़ा अवश्य पार होगा, नीच से नीच मनुष्य का भी उद्धार हांगा ।

थी बेकसी की धूप हृदय में भरी हुई ।

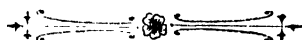
पर सूखी डाल उसकी कृपा से हरी हुई ॥

दासी— गाना ।

युग युग जिये तेरो ललना—प्यारी बहना ॥

ऋद्धि सिद्धि आ चँवर डुलावें—

सति गौरी झुलावें पलना—तेरो ललना ॥



महल ।

( कृष्ण और अर्जुन का आना )

कृष्ण—शान्त हो अर्जुन ! शान्त हो ! आज तुम्हें क्या हो गया है ?



अर्जुन—पूभो ! मैं स्वयं नहीं जानता कि मुझे आज क्या हो गया है । इन्हीं हाथों से, इन्हीं चरणों को छूकर, अपने हृदय के कमलनेत्र को आलिंगन करके कई बार विदा किया है, परन्तु आज न जाने आप से विछुड़ने में क्यों इतना दुःख होता है । मैं इस हृदय को बड़ी सान्त्वना देना चाहता हूँ, परन्तु वह भीतर ही भीतर रोता है ।

बहुत उद्योग करता हूँ विदा आनन्द मन से दूँ ।

बड़ी मैं चेष्टा में हूँ अलिंगन चित्त प्रसन्न होलूँ ॥

मगर जब शब्द “जाओ ईश” मेरे मुख से चलता है ।

हृदय यह काँप जाता है कलेजा तब मसलता है ॥

कृष्ण—यह तो तुम्हारे निर्बल हृदय का रोग है जो ऐसा सोग है ।

अर्जुन—नहीं नाथ ! मुझे शंका होती है कि ये नेत्र, यह कमलनेत्र जो मेरे जैसे अंधे को अंधेरे मार्ग में लेजाने के लिये दीपक का काम देते थे; यह कोमल हाथ—जो मुझे मझधार में डूबते हुये थाम लेते थे—यह मुखारबिन्द जो मेरे दुःखों की उमड़ती हुई आँधों को शांत कर देते थे—इन मुख से निकले हुये मृदुबचन जो मेरे ऐसे नीच लोलुप रोगी को उपदेश रुपी औषधि से जीवनदान देते थे फिर दिखाई देंगे, फिर सुनाई देंगे या नहीं ? इस शान्तिस्वरूप के फिर दर्शन होंगे या नहीं ?

कृष्ण—अर्जुन, तुम ऐसे ज्ञानी होकर यच्चों की ऐसी बातें मुख में लाते हो—ऐसे धीर वीर होकर निर्वर्तता के आखेट हुए जाते हो ?

अर्जुन—धीर वीर ज्ञानी योद्धा ! कौन मैं ? किसने बनाया, मुझे इन उपाधियों से किसने भूषित कराया ?

बहा मङ्गधार में जब पार तब तुमने लगाया है ।

बना जब भीरु कायर आपने गीता सुनाया है ॥

चला जब आग में जलने तुम्हीं ने आ बचाया है ।

वो अपने कौशलों द्वारा हमें विजयी बनाया है ॥

हुई जब शान्ति संकट की तभी तुम छोड़ जाते हो ।

बना के प्रेम में अंधा हृदय को ताड़ जाते हो ॥

कृष्ण—परन्तु भाई ! क्या तुमने मुझे इसके पहिले कई बार नहीं विदा किया—क्या तुमने मुझे पहले घर जाने नहीं दिया ?

अर्जुन—दिया, भला इसमें मैं नहीं कब करता हूँ !

कृष्ण—तब अब मुझे क्यों रोकते हो ? मैं घर जाता हूँ, थोड़े दिन में फिर आ जाऊँगा । घर वालों को भी देख आऊँगा और राज्य काज का भी प्रबन्ध कर आऊँगाः—

अर्जुन—( ठंडी साँस लेकर ) जैसी मर्जी !

कृष्ण—फिर वही ठंडी साँस का आना—यह कौन सा है लड़कपन दिखाना ?

अर्जुन—प्रभो ! शीघ्र दर्शन देना—जल्द आना । कहीं इस सेवक को भूल न जाना । ( पाँव पड़ता है )

कृष्ण—उठो प्यारे, अर्जुन ! उठो । तुम्हें मुझसे गले मिलना चाहिये—फिर पाँव क्यों पड़ते हो ?

अर्जुन—नाथ ! यह सिर इन चरणों केही लायक है—इस शीश का यह चरण ही सदा सहायक है ।

कृष्ण—अच्छा आज्ञाओं और मुझे अपने भाइयों से आज्ञा दिलवाओ !

अर्जुन—जो आज्ञा !

हो आज्ञा आपकी तब शीश कब झुकने से रुकता है ।

झुकेगा ये सदाही नाथ और यह अब भी झुकता है ॥

( दोनों गले मिलते हैं—अर्जुन की आँखों में आँसू आते हैं  
: कृष्ण उसे देख लेते हैं )

धरि धीरज सुख पूर्ण अब बिदा करो हे तात ।

अर्जुन—किन मुख से मैं यों “कहूँ, जाव हृदय के नाथ ।”

जो दुख में सुख में रहे सदा हमारे साथ ॥

( सुधिष्टिर का आना )

कृष्ण—तात ! आपको बधाई है जो स्वराज्य की विजय-पताका फहराने की शुभ घड़ी आई है ।

युधिष्ठिर—यदुराई ! यह विजयपताका घमण्ड से हमारा शीश ऊंचा नहीं करती—वरन् लज्जा से झुका देती है ।

**कृष्ण—यह क्यों ?**

युधि०—पू०—

बुद्धि जब भ्रष्ट हुई नष्ट हुये दोनों पक्ष ।

छोड़े अंधा धुंध हाथ भाई पर भाई ने ॥

ब्रह्मचर्य का घमण्ड सर्व खण्ड खण्ड हुआ ।

खाया शास्त्रविद्या को मनकी बुराई ने ॥

भूलक रही जिनमें तस्वीर बल वीरता की ।

अपनी ठोकर से वे दूट गये आई ने ॥

आरत हो भारत पुकारत है हाय मुझे ।

गारत किया महाभारत की लडाई ने ॥

( बेताब )

कृष्ण—परंतु अब पल्लताने का समय नहीं है—जिन कठिनाइयों से यह राज्य लाभ किया—जिन कष्टों से राज्य-सूय यज्ञ में सफलता पाई उसे अब निभाइये और युवराज परीक्षित को राज्य मुकुट पहनाइये ।

युधि०—जो आज्ञा । चलिये अंतः पुर में चलिये ।

कृष्ण—नहीं मैं अब जाना चाहता हूँ, कारण मुझे यहाँ बहुत दिन व्यतीत हो गये—इस हेतु मेरे घर पर लोग चिंतित होंगे ।

युधि०—आपका कहना यथार्थ है । इसमें सेवक को कब नाहीं है—परंतु मधुसूदन ! जब आपही ने सुभट नाविक बनकर हम लोगों को पार लगाया है—संसारी रंगमंच पर सूत्रधार बनके हम जैसे तुच्छ पात्रों को इस ऊँची दशा में पहुँचाया है—तब इस आखिरी दृश्य में भी साथ देने से क्यों मुख फिराते हो—घर जाने के लिये क्यों इतनी शीघ्रता मचाते हो ?

अर्जुन—यही तो मैं भी कहता हूँ ।

कृष्ण—नहीं राजन् ! पिता माता को देखे बहुत दिन व्यतीत हो गये । यही कारण है कि इतनी उत्कंठा है ।

युधि०—तो अपने परीक्षित को राज्यमुकुट पहना लीजिये, हमारी आँखे ठंडी बना लीजिये—तब यहाँ से पधारिये बस इस सेवक की इतनी प्रार्थना और स्वीकारिये ।

कृष्ण—अच्छा जो आपकी आज्ञा ! धर्मराज ! महात्मा भीष्म ने शरशैया पर पड़े हुये आपको जो अनमोल उपदेश दिये हैं उनके विषय में अब विशेष कहना वृथा है । परंतु मेरी यह बात ध्यान पूर्वक याद रखना कि राजाओं के लिये राज-धर्मही सब धर्मों से श्रेष्ठ है—इस धर्म से ही मनुष्य समाज



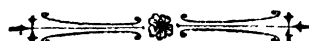
में यथेष्ट हैं । जिस प्रकार लगाम ठोक रहने से घोड़ा ठोक रहता है उसी प्रकार राजधर्म के प्रभाव से मनुष्य अपने धर्म की मर्यादा के भीतर रहता है ।

पाल बनो महि मण्डल के खल घालक हो बैरिन सिर गाजो ।  
न्याय समय चतुरानन हो अरु बुद्धि गजानन सो बस राजो ॥  
सन्तन को सन्मान करो गुनवानन को यश दे छवि छाजो ।  
जो यह धर्म रहे मन में अहि पै महि है तब लो सुख साजो ॥

युधि०—उपकार भगवन् ! अनन्त उपकार । आपके इन अमूल्य उपदेशों पर ही अपने वैभव का आधार है—चलिये यह सेवक आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य करने को तय्यार है ।

जल थल, चराचर, विश्व में बस आपका आधार है ।  
जिस पर कृपा हो आपकी बस उसका बेड़ा पार है ॥  
गो जीव के फँसने को याँ नौका पड़ी मझधार है ।  
पर भय नहीं है उसको जिसके आप खेवनहार हैं ॥  
हैं धन्य अपने भाग्य जिनके आप बन्धु सहाय हैं ।  
उपदेश क्या ? मरने हुये को संजिवनी उपाय है ॥

[ सबका जाना ]





## राज्य दर्बार ।

( परीक्षित का राज्याभिषेक-युधिष्ठिर-भीम नकुल-सहदेव  
का दर्बारी समेत खड़े दिखाई देना । कृष्ण के साथ  
परीक्षित का आना सहेलियों का गाना )

सहेलियाँ—

गाना ।

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला, या शुभ्र वस्त्रा वृता ।  
या वाणा वर्दण्ड मण्डित करा, या स्वेत पद्मासना ॥  
या ब्रह्मा स्त्र्युत शंकरः प्रभृति भिर्देवै सदा वन्दिता ।  
सामाँ पातु सरस्वति भगवती निःशेष जाह्नवा पहा ॥  
शुभ दिन यह भयो-शोभत शुभ काज राज-  
धन्य भाग्य नेत्र आज-दिवस ये दिखायो-शुभ०  
खिले हृदय पुष्प सारे निरखत युवराज प्यारे-  
पाण्डव के प्राण प्यारे आनंद हर्षायो—शुभ०

- १ दरवारी—अब कलह रूपी भयंकर द्वेष का सब नाश है ।
  - २ दरवारी—शुभ्र ज्योति शान्ति है अरु न्याय रूप प्रकाश है ॥
  - ३ दरवारी—मिट गयी सब की व्यथा अब आज आनन्द काज है ।
  - ४ दरवारी—हम हुये गदगद हमारे वीर सुत महाराज हैं ॥
- युधि०—( कृष्ण से ) प्रभो आइये, अपने इस नन्हें से भक्त को



अपने करकमल द्वारा यह ताज पहनाइये और हमारे धर्म से हमें उन्नत बनाइये ।

कृष्ण—जो आज्ञा । ( कृष्ण जो मुकुट लेकर परीक्षित को पहनाना चाहते हैं वह रोकता है )

परीक्षित—ठहरिये भगवन् ! ठहरिये—बड़ों के होते हुए यह मुकुट छोड़ों को शोभा नहीं देता । इस कारण यह राजमुकुट आप अपने शीश पर चढ़ाइये और मुझे दास रूप में अपनाइये ।

कृष्ण—चिरंजीव परीक्षित ! तुम वीर अभिमन्यु के स्मारक हो, इस हेतु हमारी यह आँखें तुम्हारे शीश पर राजमुकुट देख कर तृप्त होना चाहती हैं ।

परी०—मेरे प्रभु ! आपने अपने इस छोटे दास की बात को कभी नहीं टाली । ( उदास होता है )

युधि०—भक्तउरचन्दन ! बालक की हठ पूरी कीजिये ।

अर्जुन—पहले आपही अपने मस्तक पर इसे स्थान दीजिये ।

कृष्ण—( युधिष्ठिर से ) आप की आज्ञा शिरोधार्य है ।  
( ताज पहन लेते हैं )

परी०—अहा ! आज हृदय मग्न मग्न हुआ ।

कृष्ण—लो अब तुम्हारी प्रसन्नता पूरी हुई और अब इस राज्यमुकुट को इसके सच्चे अधिकारी को पहनाता हूँ । ( परीक्षित को राजमुकुट पहनाना ) अब इस मुकुट ने यथास्थान शोभा पाई है और इस छोटे से राजा को बड़ा होने का आशीर्वाद और बधाई देने की घड़ी आई है ।

सब—बधाई है, राजा परीक्षित को बधाई है ।

कृष्ण—देखो वीर ! आज तुम उस सिंहासन पर बैठाये गये हो, उस भार के स्वामी बनाये गये हो, जिसके लिये तुम्हारे दादों ने भयंकर संग्राम किया, बड़ी २ कठिनाइयों से उसको प्राप्त

किया । अब जब कि तुम इस योग्य हो गये हो कि वह तुम्हें इसका भार सौंप कर अपना चित्त संसारी भंभटों से हटायें, तुम्हें महाराज बना कर अपना मन कुछ उसपार जाने के लिये लगायें; तब यह भार तुम्हें सौंपा जाता है ! देखना पुत्र ! राज सिंहासन पर बैठना कुछ सहल काम न समझना, इस पर बैठने पर सब पूजा का स्वामी अपने आपको न मान लेना; पूजा के भाग्य को डोरी को घुमाने फिराने का अधिकारी अपने का न जान लेना । वरन:—

सदा आनन्द जिसमें हो पूजा को काम वो करना ।  
पूजा पर कष्ट हो कैसा ही तक्षण तुम उसे हरना ॥  
सबक हूँ पूजा का, चित्त में दिनरात यह धरना ।  
विकार है पंच जो जड़ नाश के उनको सदा तजना ॥  
कठिन से भी कठिन हावे समस्या पर न हट जाना ।  
सदा हो धर्म की जय बस यही उपदेश मन लाना ॥

( परीक्षित शिर झुकाता है, कुवारी कन्यायें पुष्पवृष्टि  
करती हैं गायकायें नाचती हैं )



आकाशमार्ग ।

( बृहद् द्वापर का प्रवेश )

द्वापर—हो चुका, मेरे प्रभाव का सूर्य अस्त हो चुका  
मेरे राज्य की अवधि पूरी हो चुकी । भगवान के आज्ञा-



नुसार अपने राज्यकाल को क्या मैंने भली प्रकार निभाया ? नहीं २ जिस समय मैं युवावस्था में परमात्मा के आदेशानुसार इस संसार में शासनार्थ आया था उस समय कैसी २ सुवर्णमयी आशाओं का भंडार अपने साथ लाया था, कि “यह करूँगा; वह करूँगा, त्रेता से भी अपने युग को बढ़ाऊँगा इस को शांति के शिखर पर पहुँचाऊँगा ” परन्तु वह कुछ न कर सका । अपनी आशा को बालू की भीत की भाँति खड़ा कर के सर्व साधन सम्पूर्ण सम्पत्ति तथा पूर्ण वैभव का मैं अधिकारी बन गया और अब जब समय बीत गया, वह शासनकाल का समय हाथ से निकल गया तो यह जीवन पानी के एक बुलबुले के समान ज्ञात होता है; जो महासागर में उत्पन्न हो कर — वहीं नष्ट होने के लिए विवश होता है ।

न शक्ति अब रही तन में न शासन की पूणाली है ।

यहाँ अब वह दशा है सर्व गुण की खान खाली है ॥

जिधर आँखे घुमाता हूँ निराशाही निराशा है ।

मेरी इस शान्ति में किस नीच ने यह आग डाली है ॥

( युवा कलियुग का प्रगट होना )

कलियुग-संसार में किये हुए तेरे कुव्यवहारों ने, तेरे अत्याचारों ने ।

समय जब बीत जाता है अधर्मी यूँही रोते हैं ।

जब वश कुछ चल नहीं सकता मुख आँसू से धोते हैं ॥

द्वापर-काल कलियुग ? संसार का नाश करने वाला एक पूचण्ड तूफान ! दिल को हिला देने वाला एक भयानक वियावान ? दूर होजा दूर होजा ! तेरे शरीर की परछाईं से मेरा शरीर जलाजाता है । सामने से हट जा, तेरे इन वाक्यों में मुझे विषभरा परिणाम प्रतीत होता है ।

कलि०—हाँ होगा । अवश्य होता होगा । ओ मुख बूढ़े ! जब अपने किये कुछ न हो सका तब दूसरों पर दोषारोपण करने ही में बड़ाई है, यह तो तेरे शासन की प्रभुताई है । मगर वह समय भूल जा । तेरा राज्य निकल गया । अब मेरा समय आया, वह टिमटिमाता हुआ दीपक बुझ गया, अब यहाँ प्रकाशमान सूर्य अपना प्रकाश फैलाता हुआ शासन करने को है आया ।

द्वार—तू और प्रकाशमान सूर्य ? तू तो अंधेरा कुआँ है जिसको देखने ही से शरीर थर्राता है ।

कलि०—फिर भी वह अंधेरा कुआँ अपने प्रेमियों को शीतल जल से उनकी प्यास बुझाता है । परन्तु तू, तू वह चमकीला रेगिस्तान है जिस में जो मूर्ख जाता है वहाँ ही जलकर भुन जाता है—

तेरे जो भक्त थे वह इस समय अब हाथ मलते हैं ।

उन्हें चलना था पैरों पर मगर अब सिर से चलते हैं ॥

यही शासनप्रणाली थी इसी का बलबला मन में ।

अगर हो आन कुछ इसकी तो मर चुल्लू में जा जलमें ॥

द्वार—कहले, कहले जो तेरे जी में आये मुझे कहले । मैं इस समय विवश हूँ मेरा राज्यकाल बीत गया । शासन प्रणाली का अन्त हो चुका । फिर भी मुझे दुःख है कि जहाँ मैंने इतनी कठिनाइयों से शांति स्थापन किया है वहाँ अब रागद्वेष का पुनः प्रचार होगा । अनाथों पर अत्याचार होगा दुःख तथा हिंसा का व्यापार होगा ।

जिन राजों को है मैंने सुख पूर्ण बनाया ।

जिनके शासन से है आज शक्तिपति थर्राया ॥

वही आज तेरे कारण सब पाप करेंगे ।

जो लेते आशीस, वही अब श्राप गहेंगे ॥

कलि०—गहेंगे और अवश्य दण्ड पावेंगे । जो तेरे अंध भक्त हैं वह मेरे द्वारा अवश्य नीचे गिरा दिये जायेंगे ।

द्रापर—तो क्या तू नई संतान उत्पन्न करेगा ? नया व्यवहार बनायेगा, नया धर्म प्रचारित करेगा, नये आचार बनायेगा ?

कलि०—हाँ अवश्य—?

नये रंगों से इस दुनिया को मैं अबतो रंगाऊँगा ।

नये आचार वो व्यवहार से भूषित कराऊँगा ॥

मेरे दुष्टात्मा बनके, उन्हें फिर से जिलाऊँगा ।

वो अपनी शक्तियों द्वारा उन्हें ऊँचा चढ़ाऊँगा ॥

मेरे तब नाम का औ शान का झंडा गड़ा हांगा ।

जो भारी वीर योद्धा है वो सेवा में खड़ा होगा ॥

द्रापर—बहक ले बहक ले, कागज की नाव में मझधार जाने वाले घमंडी नाविक ! थोड़ा और बहक ले । परन्तु इसके पहिले अपने ऐसे अन्यायों के परिणाम पर दृष्टि डाल कर तनिक विचार ले—हिरण्यकश्यप, रावण, कंस इत्यादि की दशा निहार ले ।

आये पहाड़ बनकर दम भरमें तिल भये हैं ।

अभिमान यहाँ सबके मिट्टी में मिल गये हैं ॥

कलि०—ओह ! जब समय आयेगा तब देखा जायगा । अभी तो मेरा राज्य है, मैं जो चाहूँगा, करूँगा । जिसे चाहूँगा मिटाऊँगा ।

चलेंगे आज्ञा में मेरी वो आनन्द पायेंगे ।

जो मुझसे मुँह फिरायेंगे उसीदम दूट जायेंगे ॥

रखूँगा वह पूणाली सबके मुखसे नाम यह आये ।

मिटा द्वापर का तारा और कलियुग भास्कर आये॥

द्वापर—हे पभो ! एक मूर्ख के हाथ में क्यों संसार शासन की बागडोर बाँध दी ? हे परमात्मा ! इस धर्म के शत्रु के हाथ में क्यों आपने धर्मात्माओं के भाग्य की चोटी डाल दी ?

कलि०—बस जिह्वा बंद कर ! तेरा कार्य यहीं समाप्त हो चुका, अब यहाँ से गमन कर ।

द्वापर—हाँ मुझे अब जाना ही है, मगर मेरी एक बात याद रख, इस वृद्ध युग का एक आदेश स्मरण रख ।

न चढ़ अभिमान से नहीं एक दिन गिर टूट जायेगा ।

घड़ा पापों का जब भर जायेगा तब फूट जायेगा ॥

कलि०—बाँध रख । इन उपदेशों को अपनी इन सुफेद दाढ़ियों में बाँध रख । वृद्धावस्था में वहाँ खाने के काम आयेगा । मुझे जो अच्छा लगेगा यह कलिराज अब वह कर दिखायेगा । जब परमात्मा ने ही उत्पन्न करने को स्वयं, पालन करने को ब्रह्मा, और नाश करने के लिए शूलपाणि को अधिकारी ठहराया है तब मैं भी एक को उत्पन्न करूँगा, एक का पोषण करूँगा और एक का नाश करूँगा । जो मेरे भक्त होंगे उनके प्रभाव का प्रकाश करूँगा, और जो मेरा मत न ग्रहण करेंगे उनका विनाश करूँगा ।

सैकड़ों ही दृश्य दिखलाऊँगा दिन और रात में ।

वो प्रभाविक शक्ति होगी आज्ञा में बात में ॥

द्वापर—अच्छा जो तेरी मर्जी हो कर, मगर जो सच्चा होगा उसे तू कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता—जो सच्चे

मार्ग पर चलने वाला परमात्मा का भक्त है, उसका तू एक बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।

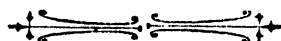
कलि०—देखा जायगा—

कौन अच्छा है बुरा है कौन देखा जायगा ।

समय जब आयेगा तुझको ज्ञान सब हो जायगा ॥

( दोनों अदृश्य होते हैं )

( भीन बदलता है )



उद्यान ।

( परीक्षित की रानी की सहेलियाँ पुष्पबाटिका में कलोल कर रही हैं और आनन्द होकर गा रही हैं )

सहेलियाँ—

गाना ।

छाई प्यारी बंसत की बहार—

कोइलिया लेत तान मारत हृदय में बान—छाई०—

नव पल्लव सुखनिधान हृदय खोल करत दान—

काम के लुभावन को आईरति कर सिंगार—छाई०—

१ सहेलियाँ—

सफेद बादल ये उड़ रहे हैं प्रभा । जमाई किरण ने आकर ।  
बिजय पताका ज्यों लहलहाती जगत की शोभा का रंग बढ़ाकर ॥



२ सहेलियाँ—

मलय पवन में ये सम्मिलित हो अलाप मारेंगी तान लाकर ।  
जो देख लेगा तनिक भी इनको तो बीध देंगी नजर मिला कर ॥

३ सहेलियाँ—

वही दशा है विचारे रवि की जो हाय कह कर बिलख रहा है ।  
किसी ने पूछा तो रोके बोला मुझे है मारा सता सता कर ॥

४ स०—चल निगोडियों ! तुमने अपनी ही जाति की बुराई  
पर कमर बाँधी है । क्या स्त्रियाँ पुरुषों के लिए दुःख रुपी  
आँधी है ?

३ स०—ये लो-अरे यह किसने कहा कि स्त्रियाँ पुरुषों के  
मार्ग में काँटा हैं किसने कहा कि स्त्रियाँ पुरुषों के लिए ज्वार  
भाटा हैं ?

४ स०—और नहीं तो क्या ? यह सता सता कर, रुला रुला  
कर, क्या स्त्रियों की बुराई नहीं है ? क्या यह विचारे सीधे  
सादे पुरुषों की बड़ाई नहीं है ?

२ स०—सखी ! तू अभी कुँवागी है ? इसी से पुरुषों की  
बड़ाई से मुख फिराती है, स्त्रीजाति को ऊँचा चढ़ाने में अपनी  
बड़ाई जताती है ।

४ स०—हाँ जताती हूँ और अवश्य जताऊँगी ! पुरुषों में  
ऐसे कौन से गुण हैं जिससे स्त्रियाँ उनकी दासी, उनको फँसाने  
की फाँसी कहलायें ? किस कारण से यह अपमान की गठरी  
अपने शिर पर उठाये ?

१ स०—बहिन ! तू जैसा पुरुषों को समझती है वैसे सब  
पुरुष थोड़े ही होते हैं, जिस प्रकार सब स्त्रियाँ एक सी नहीं  
होतीं उसी प्रकार सब पुरुष एक से नहीं होते हैं, कोई स्त्रियाँ

अपने पति के गुणों पर मुग्ध रहती हैं, तो बहुत से पुरुष भी ऐसे होते हैं जो स्त्रियों के आज्ञाकारी दास होते हैं ।

४ स०—होते होंगे । परन्तु मैंने तो जहाँ तक धर्म पुस्तक, इतिहास में दृष्टि दौड़ाई, वहाँ तक पुरुषों को अत्याचारी ही पाया । जिन स्त्रियों ने अपने पति के लिए जान तक न्यौछावर करने में आगा पीछा न किया, उन्हीं को उनके पतियों ने दो २ आँसू रुलाये:-

अजब पाषाण हृदयी जाति इन पुरुषों ने पाई है ।

कि इनके कर्म में अरु धर्म में भी बेवफाई है ॥

३ स०—अरे परन्तु ओ बहकने वाली कामिनी ! पुरुषों को नीचा दिखाने वाली भामिनी ! तनिक ऐसे पुरुषों की सूची तो सुना, अपने इस ज्ञान भँडार के कुछ हमें भी फल चखा ।

४ स०—हाँ हाँ सुनो, और की तो बात जाने दो, भारत के मुकुट शिरोमणि राजा दशरथ के लाल, यशोदा के बाल श्री रघुनाथ जी ने जिनको भारत के क्या स्त्री क्या पुरुष सब प्रातःकाल उठकर “ब्राहिमाँ ब्राहिमाँ रघुवंश शिरोमणि रामचन्द्र की जय हो” ऐसा जपते हैं उन्होंने ही क्या सती सीता को नहीं सताया ? जिस सीता ने, जिस पतिव्रता की खान ने वन जाने के समय उन्हीं निष्ठुर रामचन्द्र का साथ दिया, जिस सीता ने कैसे २ कठोर कष्ट तथा हृदयविदारक दुःख सहने पर भी केवल रघुनाथ के दर्शन पाने के हेतु प्राण न विसर्जन किया, जिस सीता ने सारे संसार को अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए अग्नि में अपने आप को समर्पण किया उसका बदला रामचन्द्र ने क्या दिया ? एक नीच जाति, वह भी वही अपने कठोर हृदयी पुरुषजाति के कहने से सीता को, उसी धर्म की देवी सतीसीता को निर्वासित किया ।

१ स०--परन्तु-

४ स०—और, सुनो जो हमारे इष्टदेव हैं, जिनको हम लोग प्रातःकाल उठकर जैगोपाल, जय नंदलाल के नाम से पुकारते हैं, वही वाँकेविहारी ने, उन्हीं नटवरगिरधारी ने क्या राधिका को बेदना नहीं पहुँचाई ! मथुरा पहुँचते ही क्या उनको दूध की मक्खी को भाँति फेंक कर आँखों से नहीं गिराया ?

१ स०—बस बस बहुत बक बक न कर । अपने इष्टदेव, अपने वासुदेव की मर्यादा में इन कटु वाक्यों का उच्चारण न कर । स्त्रियों की बड़ाई करने वाली ! सुन, क्या उन्हीं रामचन्द्र के पिता राजा दशरथ की स्त्री कैकई ने अपने पति के प्राण नहीं लिए ? क्या उर्वशी ने अपने महाराज के दादा जी वीर अभिमन्यु के पिता धनुर्धर अर्जुन को कष्ट नहीं दिये ?

४ स०—फिर भी—

३ स०—फिर भी क्या ? मेरा तो सिद्धान्त है कि—

कर्म में पुरुषों से स्त्री की अवस्था है बुरी ।

हैं यदि दोषी पुरुष तो नारियाँ भी हैं गिरी ॥

तू अभी बख्शी है क्या समझेगी भेद इन बात में ।

किस महत का काम कर डाला था दशरथ तात ने ॥

सह लिया सब दुख हृदय पर पर न भूले कर्म से ।

नारि भी निज तज दिया फिर भी न डोले धर्म से ॥

२ स०—जिस धरम का पड़ कसौटी में हरिश्चंद्र राज ने ।

बेच डाला पुत्र को, पत्नी को कर्तब काज में ॥

उन पुरुष के कर्म-बल से चल रहा संसार है ।

हम हैं कंटक मार्ग के औ धर्म के भू भार है ॥

३ स०—(सामने देखकर) वो देखो, महारानीजी पधार रही हैं । अब

इन वादाविवाद को तजो और अगुवानी के लिए आगे बढ़ो ।

तजो वादा विवाद और नेत्र को सेवा में उलझाओ ।

जो संशय दूर करना हो महारानी से सुलझाओ ॥

( महारानी आती हैं सहेलियाँ झुककर उनका स्वागत करती हैं )

१ स०—घटा थी अब तलक पर चाँदनी ने आ सँभाला है ।

जहाँ अंधों की बक २ थी वहाँ पर अब उँजाला है ॥

महारानी—क्यों आज ऐसी कौन सी समस्या उपस्थित है, जिसको हल करने के हेतु यह हलचल मचा रखी है ? ।

२ सखी—महारानी जी ! समस्या तो अवश्य कठिन है, परन्तु जब सरस्वती स्वरूप में आप का आगमन हुआ है तब अवश्य समस्या हल की जायगी; और यह कुँवारी घमंडी पुतली अपने मुख के लायक उत्तर पायगी ।

महारानी—परन्तु मैं भी तो सुनूँ कि आज ऐसी कौन सी बात है जिसके हेतु विचारी मालती पर आघात है ?

४ सखी—( मालती ) महारानी जी ! और कुछ नहीं मेरा कहना है कि पुरुष स्त्रियों की सेवा का कुछ ध्यान ही नहीं करते हैं । वह तो अपने पत्नियों के लिए प्राणतक विसर्जन करने से मुख नहीं मोड़तीं, पर कठोर पुरुषजाति और सब तो जाने दीजिए उन उपकारों के बदले में उन स्त्रियों का नाम अनारी, मत की मारी, अबला इत्यादि इत्यादि धरते हैं ।

२ सखी—इस हेतु इस विचारी ने इन्हीं भयंकर परिणामों को सोचकर जीवन भर कुँवारी रहने की मन में ठानी है ।  
 ( मालती से ) क्यों है न ठीक ?

गाना ।

वाह जी वाह बलिहारी तिहारी—कुँवारि नारि विचारी कैसी  
हैगी नन्ही भोली भाली ।

३—हैं पुरुष अज्ञान—हृदय पाषाण के रखेनवाले, हमको अबला  
कहने वाले—दारुण दुख के देने वाले ।

सब—चल चल नादान—वाह जी ।

१—नारी नर से है बनी—मानले तू नादान ।

बिन नर के नारी कभी—पाय सके नहीं मान—वाह०—

मालती—हाँ मेरा तो ऐसा ही विचार है ।

महारानी—मालती, प्यारी मालती ! अभी तू संसार की  
कच्ची कली है तभी बिना विचारे ऐसी अनहोनी प्रतिज्ञा पर  
तुली है । जिस प्रकार सब जल खारे नहीं होते, सब पवन  
हृदय को वेदना नहीं पहुँचाते, उसी प्रकार सब पुरुष मत-  
लबी नहीं होते, सब पुरुष कठोर नहीं कहलाते ।

मालती—परन्तु महारानी जी ! यह भला कैसे जाना जा  
सकता है कि अमुक पुरुष सीधा, अमुक टेढ़ा है, अमुक सिंह  
है तो अमुक भेड़ा है ।

महारानी—इसके जानने की हमें कोई आवश्यकता नहीं,  
जिस प्रकार ठंडे जल की बूँदे जलती हुई ज्वाला को शान्त  
कर देती हैं, जिस प्रकार खिलती कलियों की मीठी मीठी सुगंध  
एक पीड़ित के मस्तक को ठंडक पहुँचा देती हैं । जिस प्रकार  
कोयल की सुरीली तान दुखी से दुखी हृदय को आनन्द-  
मय बना देती है, उसी प्रकार यदि स्त्री का स्वभाव अच्छा हो,  
उसके आचरण ठीक हो, उसके व्यवहार उत्तम हो तो बुरे से  
बुरे मनुष्य को, कठोर से कठोर हृदय रखने वाले मर्द को,  
अच्छे आचरण वाला, कोमल हृदय वाला—निःस्वार्थ बना देती

इन वादाविवाद को तजो और अगुवानी के लिए आगे बढ़ो ।

तजो वादा विवाद और नेत्र को सेवा में उलझाओ ।

जो संशय दूर करना हो महारानी से सुलझाओ ॥

( महारानी आती हैं सहेलियाँ झुककर उनका स्वागत करती हैं )

१ स०—घटा थी अब तलक पर चाँदनी ने आ सँभाला है ।

जहाँ अंधों की बक २ थी वहाँ पर अब उँजाला है ॥

महारानी—क्यों आज ऐसी कौन सी समस्या उपस्थित है, जिसको हल करने के हेतु यह हलचल मचा रखी है ? ।

२ सखी—महारानी जी ! समस्या तो अवश्य कठिन है, परन्तु जब सरस्वती स्वरूप में आप का आगमन हुआ है तब अवश्य समस्या हल की जायगी; और यह कुँवारी घमण्डी पुतली अपने मुख के लायक उत्तर पायगी ।

महारानी—परन्तु मैं भी तो सुनूँ कि आज ऐसी कौन सी बात है जिसके हेतु विचारी मालती पर आघात है ?

४ सखी—( मालती ) महारानी जी ! और कुछ नहीं मेरा कहना है कि पुरुष स्त्रियों की सेवा का कुछ ध्यान ही नहीं करते हैं । वह तो अपने पत्नियों के लिए प्राणतक विसर्जन करने से मुख नहीं मोड़तीं, पर कठोर पुरुषजाति और सब तो जाने दीजिए उन उपकारों के बदले में उन स्त्रियों का नाम अनारी, मत की मारी, अबला इत्यादि इत्यादि धरते हैं ।

२ सखी—इस हेतु इस विचारी ने इन्हीं भयंकर परिणामों को सोचकर जीवन भर कुँवारी रहने की मन में ठानी है ।  
( मालती से ) क्यों है न ठीक ?

गाना ।

वाह जी वाह बलिहारी तिहारी—कुँवारी नारि विचारी कैसी  
हैगी नन्ही भोली भाली ।

३—हैं पुरुष अज्ञान—हृदय पाषाण के रखेनवाले, हमको अबला  
कहने वाले—दारुण दुख के देने वाले ।

सब—चल चल नादान—वाह जी ।

१—नारी नर से है बनी—मानले तू नादान ।

बिन नर के नारी कभी—पाय सके नहीं मान—वाह०—

मालती—हाँ मेरा तो ऐसा ही विचार है ।

महारानी—मालती, प्यारी मालती ! अभी तू संसार की  
कच्ची कली है तभी बिना विचारे ऐसी अनहोनी प्रतिज्ञा पर  
तुली है । जिस प्रकार सब जल खारे नहीं होते, सब पवन  
हृदय को वेदना नहीं पहुँचाते, उसी प्रकार सब पुरुष मत-  
लबी नहीं होते, सब पुरुष कठोर नहीं कहलाते ।

मालती—परन्तु महारानी जी ! यह भला कैसे 'जाना जा  
सकता है कि अमुक पुरुष सीधा, अमुक टेढ़ा है, अमुक सिंह  
है तो अमुक भेड़ा है ।

महारानी—इसके जानने की हमें कोई आवश्यकता नहीं,  
जिस प्रकार ठंडे जल की बूँदे जलती हुई ज्वाला को शान्त  
कर देती हैं, जिस प्रकार खिलती कलियों की मीठी मीठी सुगंध  
एक पीड़ित के मस्तक को ठंडक पहुँचा देती हैं । जिस प्रकार  
कोयल की सुरीली तान दुखी से दुखी हृदय को आनन्द-  
मय बना देती है, उसी प्रकार यदि स्त्री का स्वभाव अच्छा हो,  
उसके आचरण ठीक हो, उसके व्यवहार उत्तम हो तो बुरे से  
बुरे मनुष्य को, कठोर से कठोर हृदय रखने वाले मर्द को,  
अच्छे आचरण वाला, कोमल हृदय वाला—निःस्वार्थ बना देती



है, यही नहीं वरन् वह गृह जिसमें ऐसी नारियाँ बास करती हैं आनन्दमय हो जाता है; आनन्दकानन के सदृश उस युगल-जोड़ी में, उस शान्तिमय दम्पति में आनन्द छा जाता है।

मालती—महारानी जी ! आप का कहना यथार्थ है। परन्तु इतनी नम्रता, इतनी आधीनता सीखने के लिए समय चाहिए।

महारानी—क्या कहा ? समय चाहिए, एक भारतवर्ष की कन्या को पतिसेवा सीखने के लिए समय चाहिए ? नहीं प्यारी मालती, नहीं, यह हमारा स्वभाविक आचरण है, इसे हमें कौन सिखायेगा ? यह हमारा पैत्रिक गुण है, यह हमें कौन बतायेगा ? जिस प्रकार कोयल का काम मोठी ताने अलापना, चाहे कोई सुने अथवा न सुने। छाया का काम ठण्ठक देना चाहे कोई ग्रहण करे अथवा न करे, सरिता का काम मोठा जल देना चाहे कोई सींचे अथवा न सींचे, इसी प्रकार हमारा काम, हम भारतवासी स्त्रियों का काम केवल पतिसेवा है चाहे पति ग्रहण करे अथवा न करे। बस पति की सेवा करना, उन्हीं की सेवा के हेतु उत्पन्न होना और उन्हीं की सेवा में मरना।

पति धर्मः पति स्वर्गः पतिहि परमं तपः ।

पतिहि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वं देवता ॥

पति सेवा से बढ़कर धर्म है जग में नहीं दूजा ।

पति पूजा के आगे तुच्छ है सब देव की पूजा ॥

पति से है पती तन की पति पत का विधाता है ।

पति है देश भी जगदीश भी अरु स्वर्गदाता है ॥

पति सेवा में चाहे कष्ट हो या प्राण तक जाये !

मगर काटो यदी इस देह को पतिनाम दर्शये ॥

गाना ।

जो चाहो कल्याण तुम जपो पति का नाम ।  
 सती धर्म पति टहल है—और नहीं कुछ काम—  
 सती धर्म मेवा जो कोई चाखे—  
 पति पग सेवा मनमें जो राखे—  
 डूबते को तारे वो—जनम सुधारे वो,  
 कुल को उबारे वो—सती०—

मालती—धन्य हैं महारानी, आप धन्य हैं, जिनके प्रताप से आज मेरी आंखें खुल गईं, जिनपर अज्ञान की धूल पड़ी थी, वह ज्ञानरूपी बौछार स धुल गई ।

गर्व मस्तक में भरा था मिट गया वह ज्ञान से ।  
 अब सुफल होवेगा जीवन भक्ति सेवा ध्यान से ॥  
 वह भी किसकी उस पुरुष की जिससे इतनी थी घृणा ।  
 है सुधर जीवन गया उपदेश अमृत पान से ॥

महारानी—प्यारी मालती ! अब मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हें तेरे मन के अनुसार पति मिले, और तुम दोनों का जीवन पुष्प के समान खिले ।

सदा रहे सुख धाम तेरा प्यारी मालती ।  
 पावो पति घनश्याम, युग युग तुम फूलो सदा ॥  
 ( भीतर से नकीब पुकारता है )

“ महाराज की सवारी पर ध्यान रहे । ”

१ सखी—चलो अब हम लोग चलें, महाराज पधार रहे हैं ।

( सब चली जाती हैं राजा परीक्षित शिकारी के भेष में आते हैं )  
 परीक्षित—हस्तिनापुर की महारानी ! आज तो यह

सौंदर्य मानो फव्वारे की सौधाराओं की भाँति फूटा पड़ता है, यह तुम्हारे सतीपनकी क्रान्ति तुम्हारे मुख से उत्पन्न होकर पूर्णिमा की चाँदनी की भाँति मेरा मन हरती है ।

महारानी—नाथ, प्राणनाथ ! परन्तु वह चाँदनी चाँद ही से निर्माणित होकर शोभा पाता है, संसार को अँगूठी में जिस प्रकार सूर्य चंद्र के हीरे चमका करते हैं उसी प्रकार आप मेरे मन रूपी मुद्रिका में नगीने की भाँति बैठकर चमका करते हैं और उस ज्योति से जो आभा निकलती है उसी से यह दासी महारानी के नाम से पुकारी जाती हूँ ।

है रूप जो कुछ आप का उसकी मैं आभा मात्र हूँ ।

अरु खेलने की आप के हाथों कि मैं एक पात्र हूँ ॥

जब तलक आदर है तब तर्क मान भी मेरा बढ़ा ।

आदर मिटेगा चूर्ण होगा जैसे पानी का घड़ा ॥

परीक्षित—प्राणवल्लभे ! ऐसा न कहो, ऐसी बातों को हृदय में स्थान न दो, तुम मेरे हृदयाकाश में ध्रुव तारा के समान विराजमान हो, तुमही मेरी राज्य रूपी नौका चलाने में सहायता देने वाली खेवट महान हो ।

तुम्ही हो जिसको पाके मैंने जीवन यों बिताया है ।

तुम्ही हो जिसके कारण यह भवन यूँ जगमगाया है ॥

सती जिसकी बगल में हो उसे किस बात की चिंता ।

मिली नारी जिसे लक्ष्मी वह तुच्छ संसार को गिनता ॥

महारानी—प्राणेश्वर ! दासी को अधिक न लजाइये, इस चरणरज से जन्म बिताने वाली की इतनी प्रशंसा इस तुच्छ दासी को न सुनाइये । और इस समय अचानक कैसे पधारना हुआ, कृपा कर यह सुनाइये ।

परीक्षित—( मुस्कराकर ) तो क्या मेरे आने में तुम्हें यहाँ कष्ट हुआ ?

महारानी—अहा ! क्या सूर्य के आने से सुरजमुखी को कष्ट हुआ ? क्या चन्द्रमा के पधारने से कमलिनी के हृदय का विकाश नष्ट हुआ ? नहीं २ वरन—

विचलित थीं विना दर्शन के आशा भरी आँखें ।

जीवित ये हो गई अब जो थीं मरी आँखें ॥

परीक्षित—अच्छा, अच्छा, अब अधिक इन आँखों को न मारो, इन्हें अब मौत के घाट न उतारो । मैंने जो कभी यदि हंसी में भी कोई बात मुख से निकाली तो तुमने अपने इस शरीर को सहस्रों गालियाँ दे डाली ।

महारानी—नहीं नाथ ! मुझे भला इन पर अधिकार ही क्या है । मैं तो आप की मोल ली दासी हूँ । मुझे चाहे आप ठोकरो से मारिये, चाहे मझधार में बहा दीजिए । चाहे डूबती हुई को उबारिए ।

परीक्षित—हृदयेश्वरी ! मुझे तुम्हारे ही गुणों पर राजा होने का अभिमान है । हाँ तो तुमने पूछा था कि मैं इस समय किस लिए अचानक आया हूँ ।

महारानी—नहीं २ वह तो ऐसे ही—

परीक्षित—अजी सुनो भी तो सही मेरे इस समय अचानक आने का एक प्रधान कारण है, और वह यह है कि मैं प्रातःकाल आखेट को जाऊँगा ।

महारानी—( अचम्भित होकर ) आखेट को ?

परीक्षित—हाँ आखेट को । परन्तु जीवनमयी ! तुमको आश्चर्य क्यों हुआ ?



महारानी—आश्चर्य क्यों हुआ ? नाथ ! दासी का अपराध क्षमा हो । यदि दूध का रंग लाल हो जाये तो क्या आश्चर्य न होगा ? यदि अमृत किसी का काल हो जाय तो क्या आश्चर्य न होगा ? आपने आज तक कभी जीवहिंसा न किया, यहाँ तक कि उसकी मनाही अपने राज्य में करवा दिया, परन्तु आज जब प्रजा आपको स्वयं हिंसा करने जाते देखेगी, तो क्या बिचारेगी ? क्या वह छोटी धारणा अपने मन में न धारेगी ?

परीक्षित—प्रिये ! क्षत्रियों का धर्म है कि हरिन बन में बूढ़ा हो जाये तो उसे अवश्य आखेट करके मारना चाहिए, इसलिए आज तक कभी हिंसा नहीं की । परन्तु अब आखेट में जाना आवश्यक है । कल प्रातःकाल जाऊँगा और इस प्रकार अनेक देशों का देशाटन भी करता आऊँगा ।

इस प्रकार हो जायगा क्षत्रिय धर्म संपूर्ण ।

देशाटन भी होयगा होगी इच्छा पूर्ण ॥

महारानी—तो क्या नाथ ! बिना आखेट किये क्षत्रिय धर्म अपूर्ण रह जाता है ?

परीक्षित—प्रिये ! शास्त्र का वाक्य यही सुनाता है, इस पर वादाविवाद करना हमारा कर्म नहीं, जो धर्म बड़े लोग चलाते आये उससे मुख मोड़ना क्षत्रियों का धर्म नहीं ।

महारानी—जो आज्ञा नाथ जी ! आप की आज्ञा शिरोधार्य है । जिस में आप को सुख है, उसमें दासी को भी आनन्द अपार है, परन्तु—

परीक्षित—परन्तु क्या ?

महारानी—दासी को विनती है कि मुझे भी साथ ले चलिये, आपकी सेवा करके आपकी थकावट मिटाऊँगी । और अपना जीवन भी सुफल बनाऊँगी ।

परीक्षित—प्रिये ! संग्राम में, आखेट में स्त्री का साथ रहना यह धर्म की मनाई है, ऐसा करने में जग हँसाई है । इसलिए तुम्हें साथ ले चलने में विवश हूँ ।

महारानी—परन्तु नाथ ! उसी भ्रम के मानने वाले राजा दशरथ की रानी ने क्या महाराज का साथ न दिया था ? उसी—

परीक्षित—उसी का फल यह हुआ कि रामचन्द्र को १६ वर्ष वन जाना पड़ा । प्रिये ! इतना ध्यान रखो, जो शास्त्रों के वाक्यों को तोड़ते हैं, वह अभ्युत्पत्ति उसका फल पाते हैं और अन्त में अपयश के भागी माने जाते हैं ।

महारानी—यथार्थ है नाथ ! आपका कहना यथार्थ है । संसार-सागर से निस्तार पाने का यदि कोई मुख्य कारण है तो वह धर्म है, वही इस संसार का मुख्य पदार्थ है ।

परीक्षित—प्रिये, चलो, आज तुम्हारे ही मुखचन्द्र को देखकर रात बितायेगें और प्रातःकाल होने पर तब आखेट को जायेंगे ।

महारानी—जो आज्ञा प्राणनाथ ! जिसमें आपकी मर्जी, आपकी प्रसन्नता है, उसी को पूर्ण करना, उसी पर चलना, वस यही इस दासी का मुख्य कार्य है—

गाना ।

पीतम पदपंकज प्राणधार—

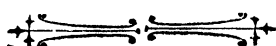
मेरो रसिया दासी तो पे निसार-प्राणधार०—

मन की शोभा ज्ञान रत्न से-तन शोभा सिंगार—

बन की शोभा विविध पुष्प सो-प्राणपति से नारि-प्राणधार०—

रूप मनोहर मनहरे-मुख देखे सुख पाय—

स्वामी पग सेवा करत-चित चिंता मिट जाय-प्राणधार०—





### भोलानाथ का घर ।

( भोलानाथ बड़ बड़ाता आता है )

भोलानाथ—चरक सुश्रुत, बाग्भट, भावप्रकाश, सारंगधर निघंट, हारीतसंहिता—सबके प्रत्येक पृष्ठ, जब कि प्रत्येक पंक्ति छान डाली परन्तु संशय रोग की उपयुक्त औषधि न मिली गुरु जी के आगे नाक रगड़ा, पाँव पड़ा, परन्तु उन्होंने भी संशय रोग की कोई औषधि नहीं है यही वेसुरा राग आलापना आरंभ कर दिया—इससे, यह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि यह रोग ही नहीं है वरन् यह वह संजीवनी गुण है जिसके बिना मनुष्य सदा पशुवत् गिना जाता है, जो मनुष्य इसको पग पग पर काम में लाता है वही अपना सुखमय जीवन बिताता है। अहा! किसी ने क्या सच कहा है—

बिना विचारे जो करे सो पाछे पछुताय ।

काम बिगारे आपनो जग में होत हंसाय ॥

विचार के कार्य करना या हर एक बातों का परिणाम सोचना याने संशय करना समान है—इसको काम में लाने वाला ही विद्वान है। इस हेतु हे मेरे गुरु धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुत बाग्भट इत्यादि इत्यादि तुम्हारी बुद्धि को सहस्र प्रणाम है ।

( भोलानाथ की स्त्री चंद्रकला का आना )

चन्द्र०—प्राणनाथ । भोजन तैयार है ।

भोला०—प्राणनाथ । याने प्राण का नाथ अर्थात् प्राण को बागडोर से बाँध जिसका पेसा अनुचित शब्द हो उसका उच्चारण एक पतिव्रता अपने मुख से अपने स्वामी को संबोधन करे यह महा अन्याय है । सुन री मेरो आधो शरीर ! मेरे प्राण को बाँधने की चेष्टा न किया कर ! मुझे किसी दूसरे ही नाम से बुलाया कर !

चन्द्र०—तो मैं आप को क्या कह कर बुलाऊँ ? पति, स्वामी, प्राणवल्लभ क्या पुकारूँ ?

भोला०—नहीं यह सब कुछ नहीं तू मुझे भोला कह कर बुलाया कर—

चन्द्र०—भोला यह कैसे हो सकता है, क्या एक स्त्री को अपने पति के नाम लेने का अधिकार है ।

भोला०—एक बार नहीं हजार बार है—बस मैं तेरा पति तेरा भर्ता हूँ—मेरी आज्ञा मेंहीं चलना तेरा कार्य है ।

चन्द्र०—परन्तु शास्त्र—

भोला०—शास्त्र को आग लगाओ । जो शास्त्र अच्छी वस्तु को रोग बतलाता है उसके नाम पर पचास खड़ाऊँ जमाओ और यह बताओ कि आज क्या भोजन बना है—

चन्द्र०—आप के आज्ञानुसार आज बेसन की कढ़ी दो जौ की रोटी बनाई है ।

भोला०—क्या कहा बेसन की कढ़ी ! जो खना वायु उत्पन्न करता है । वायु के बढ़ जाने से ही मनुष्य आखरी साँस लेकर यमद्वारे पर पहरेदारी करने जाता है, उसी वस्तु को उसी निकृष्ट विष को तू मुझे खिलाकर क्या मेरा प्राण लेना चाहती है ?

चन्द्र०—तो क्या खाइयेगा ?

भोला०—केवल जौ की रोटी और नोन ।

चन्द्र०—जो आज्ञा ! तो आइये । ( जाना चाहती है )

भोला०—मगर नहीं सुन, नोन शरीर में खार उत्पन्न करता है, जब शीत प्रधान है—इस हेतु तू मेरे हेतु फलाहार बना और वह भी केवल द्राक्ष की दूध में खोर पका और पीने का जल न गरम न ठंडा, न उवाला, यानी सात कपड़े का छाना हुआ ला ।

चन्द्र०—जो आज्ञा । ( जाने २ स्वगत ) स्वामी समस्त रोगों की औरों की औषधि करते हैं परन्तु अपने संशय रोग को शरीर से अलग नहीं करते हैं—( जाती है )

भोला०—संसार में यदि कोई महा मूर्ख—गदहे से भी अधिक मूर्ख योनि है तो वह स्त्री-योनि है । इनका यह ज्ञान ही नहीं कि पुरुष के मनोभाव का क्या अर्थ है ? किस समय उनकी कैसी इच्छा है ! इसी हेतु महाविद्वान् मनु ने क्या ठीक कहा है—

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रति रुत्तमा ।

दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणा मात्मन शृह ॥

अपनी इस उलटी खोपड़ी वाली स्त्री को यदि मैंने एक दिन बेसन की कढ़ी बनाने की आज्ञा दी तो वह प्रति दिवस कढ़ी खिलाती है, जोते जी मुझे मुर्दा बनाती है ।

( भोलानाथके मित्र कालीशंकर का आना )

कालीशंकर—जैगोपाल—भोलानाथजी ।

भोला०—जैगोपाल आओ भैया कालीशंकर ! कहाँ से आ रहे हो ?

काली०—भाई, आज प्रातःकाल से मैं एक आश्चर्यपूर्ण कहानी पढ़ रहा था, उसके पढ़ते २ इतना घबड़ा गया कि

यमुना स्नान करने का बिचार हुआ, स्नान करते करते तुम्हारा ध्यान आ गया और इस हेतु उधर से दर्शन को मैं यहाँ आ गया ।

भोला०—बड़ी कृपा [ बिचार कर ] परन्तु भाई ! तुम महा  
मूर्ख हो ।

काली०--ऐं—यह कैसे ?

भोला०—क्या तुम को ज्ञात नहीं कि स्नान करके गीले वस्त्र में किसी के गृह पर जाना बड़ा अशुभ लक्षण होता है यह जान कर भी तुम इस दशा में मेरे गृह पर शनिश्चर रूप में आ धमके, क्या यह बात उचित है ?

काली०—भाई! क्षमा करना, तुम्हारी ममता ने, तुम्हारे स्नेह ने मुझे विवश कर दिया कि मैं तुम्हें वह प्रातःकाल वाला समाचार अवश्य सुनाऊँ—स्त्रियों की चालबाजी बतलाऊँ—इसी हेतु मैं वस्त्र बदलने घर भी न जा सका।

भोला०—अस्तु कोई चिन्ता नहीं, यदि तुम्हारा प्रेम इतना प्रबल है तो ऐसे अशकुन पर अवश्य विजय प्राप्त करोगे—  
अच्छा तो सुनाओ वह क्या समाचार है, जिसने तुमको इतना बाबल बना दिया ?

काली०—भाई, क्या कहूँ—आज प्रातःकाल मैं क्या पढ़ता हूँ कि जिस प्रकार आप एक पत्नी के मर जाने पर पाँच स्त्रियाँ व्याह कर ले आये उसी प्रकार एक स्त्री ने लगातार पाँच पति कर डाले। मगर अंतर केवल इतना ही था कि आप की स्त्रियाँ स्वर्गपुर से नेवता पाकर गईं और उस स्त्री ने बिना बुलाये अपने पतियों को बिष्णुलोक में भाड़ू देनेके लिये भेज दिया।

## भोला०—यानी ?

**काली०—**यानी विवाह होनेके पश्चात् हर एक को जीर में

विष खिलाकर मार डाला और फिर कुंवारी बन दूसरा, तीसरा चौथा और पाँचवा विवाह तक कर डाला —

भोला०—हैं ! इस भारतवर्ष में ऐसा अत्याचार, पुरुषजाति पर ऐसा बलात्कार ?

काली०—हाँ भाई, जबसे पढ़ा है तब से मुझे एक प्रकार से स्त्रियों से घृणा हो गई है—

भोला०—उस स्त्रीका नाम क्या है ?

काली०—उसका नाम चन्द्रकला—

भोला०—क्या कहा चन्द्रकला ?

काली०—जी हाँ चन्द्रकला ! क्यों, आप इस नाम से घबड़ा क्यों गये ?

भोला०—[स्वगत] हा परमात्मा ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ क्या मेरी चन्द्रकला ने मुझ से बहिले पाँच खून कर डाले ! वह भी खीर में विष खिलाकर—

काली०—भाई, तुम क्या सोचने लगे ?

भोला०—बस अधिक बकबक न करो । इस समय मेरा माथा चकरा रहा है । जाओ सीधे नाक के सीधे अपने गृह की ओर चले जाओ । मैं तुमसे इस बात पर फिर बात चीत करूँगा— इस संताप से मेरा सिर चकरा रहा है, मुझे क्रोध चढ़ा आ रहा है ।

काली०—अच्छा भाई जाता हूँ [ जाते २ ] बिलक्षण मनुष्य है ! बात करते २ पागलों की भाँति बड़बड़ाने लगा । [जाता है]

भोला०—हाँ अब मैंने जाना—मेरे कहने पर कि आज खीर बना कैसी वह विषैली नागिन मेरा अन्त करने के लिये 'जा आद्या' कहके शान्त रूपमें चली गई । परन्तु उसे ज्ञान नहीं कि—

हम कभी दाँव में उसके नहीं आने वाले ।  
हम हैं नाकों से चना उससे पिसाने वाले ॥  
वो थे उल्लू जो मरे प्राण गँवाकर ऐसे ।  
हम तो उसको ही हैं मरघट पे पुचाने वाले ॥

बस आज से इस घरमें, इस महल्ले में, इस शहर में, अन्न का एक दाना खाने वाले पर फिटकार है ! भूखा रहूँगा, परन्तु अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा—जब उसकी कलाई खोलूँगा, उस को उसका अस्ती रूप जानना समझा दूँगा—तब उसे त्याग कर समस्त घर की चीजों में अग्न लगाकर कहीं अन्न जल लूँगा ! परन्तु बुद्धि कहती है, कि शीघ्रता करने में काम बिगड़ जाता है । इस हेतु सोच विचार कर तब कोई काम उपयोग में लाना चाहिये । उसे भी उसकी करनी का फल चखाना चाहिये । [चन्द्रकला आती है ]

चन्द्र०—चलिये भोजन तैयार है ।

भोला०—(स्वगत) आ गई मेरे प्राण लेनेवाली काली डाइम,  
आ गई—

चन्द्र०—हैं ! आप बोलते क्यों नहीं ! चलिये भोजन तैयार है बिलम्ब न करिये ।

भोला०—(स्वगत) हाँ बाबा ! बिलम्ब क्यों ! जितनी जल्दी हो सके मेरा प्राण ले ले (प्रगट) प्रिये ! बात यह है कि आज इस समय मैं भोजन नहीं करूँगा ।

चन्द्र०—क्यों ? अभी तो आपने कहा था कि खीर बना—

भोला०—(स्वगत) बस इसी खीर ने तो प्राण के आखीर कर देने पर कमर बाँधी है (प्रगट) कहा था तो मैंने अवश्य, परन्तु इस समय मेरी इच्छा भोजन करने की नहीं होती ।

चन्द्र०—तो वह खीर क्या होगी ?

भोला०—(स्वगत) क्या संसार में तुम्हें और कोई मार डालने के लिये नहीं मिलता जो मेरे पीछे पड़ी है—(प्रगट) उस को तुम स्वयं खा लो ।

चन्द्र०—वाह इतनी अधिक खीर मैं कैसे खा लूँ ? क्या मैं कोई राक्षसी हूँ—

भोला०—(स्वगत) इसमें भी कुछ सन्देह है (प्रगट) यदि तुम सब खीर नहीं खा सकती तो गणेश को खिला दो !

चन्द्र०—हैं, गणेश को खिला दूँ ? एक सेवक को ! जिसको आप पहिले चावल की चूनन खिलाने की आज्ञा देते थे आज द्राक्ष की खीर खिला दूँ—

भोला०—(स्वगत) हाँ, क्योंकि समय ही ऐसा आ गया है । (प्रगट) प्रिये ! असल बात यह है कि आज मैंने उसका असली रूप जाना है (स्वगत) और तुम्हें भी भली प्रकार पहिचाना है (प्रगट) इस हेतु जब कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तब तुम मेरे मतानुसार उसे ही मेरा अंश खिला दो ।

चन्द्र०—जो आज्ञा ! परन्तु आज मैंने बड़े परिश्रम से खीर पकाई थी, आप के न खाने से मुझे बड़ा दुःख हुआ ।

भोला०—जरूर हुआ होगा (स्वगत) क्योंकि आज तू मेरे प्राण लेने में कुतकार्य न हुई ( प्रगट ) अच्छा जो ईश्वरेच्छा !

( चन्द्रकला जाती है )

भोला०—चलो आज तो किसी प्रकार पीड़ा गई ! कल मैं फिर कोई न कोई बहाना निकाल लूँगा, आई हुई बला को सर से टाल दूँगा ! कैसी भोली भाली बनकर आई थी ! सच है बाबा, सच है ।

स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानात् कुतो मनुष्यः ।

अर्थात् स्त्री के चरित्र को देव भी नहीं जान सकते, तब तो पुरुष इनके आगे कुत्ते के बराबर हैं—

गाना ।

औरत का वहीं तक प्यार जहां तक मर्दों की है जवानी ।

औरत की जात है स्यानी ॥

ये जुल्फे काली काली हैं नागिन डसने वाली ।

आँखें हैं जहर की प्याली—जिसने पान किया—

चढ़ बैठी ज्यों शैतानी ॥ औरत०—

इनको चाहे पत खोये—पति मारके सत्ती होंवे—

सारे कुल को ये डुवोयें—और नजर न आवे पानी ॥ औरत०—

( गणेश का आना )

गणेश—अगर सँसार में कोई वस्तु सुख पहुंचा सकती है तो वह स्त्री का प्रेम है । हे परमात्मा ! जैसे तूने स्त्री से पैदा किया—स्त्री की गोद में खिलाया, स्त्री के तनका दूध पिलाया, बस मेरी केवल इतनी प्रार्थना है कि मरते समय भी स्त्री की गोदी में ही पड़ा पड़ा प्राण विस्मर्जन करूँ—और मरते समय बस प्रेम ही का मंत्र उच्चारण करूँ ! बच्चा गणेश ! यदि प्रेम की खेती यहाँ करोगे तो अवश्य आनंद के फल वहाँ काटोगे— हैं ! [ देखकर ] यह कौन ? गुरुजी ! प्रणाम—

भोला०—चिरंजीव रहो—बेटा गणेश ! तेरी आँखों में मुझे—

गणेश—हाँ गुरुजी, प्रेम झलक रहा है—अवश्य झलकता होगा ।

भोला०—नहीं २ मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तेरी आँखों से ज्ञात होता है कि तू बहुत भूखा है—

गणेश—जी, मेरा तो प्रेम फल खाकर पेट भर चुका है फिर भी कहिये क्या आज्ञा है ?

भोला०—अच्छा तो जा आज मेरी स्त्री ने द्राक्ष की खीर पकाई है, जाकर खाले, अपनी भूख मिटा ले—

गनेश—और आप ?

भोला०—नहीं आज मैं नहीं खाऊँगा !

गनेश—[ स्वगत ] लो आज प्रेम के वर्णमाला पढ़ते हो चावल की खुद्दी के बदले खीर मिल रही है और वह भी किस की द्राक्ष की ! बच्चा गनेश ! यह भी प्रेम की महिमा है ।

[ प्रगट ] तो क्या गुरुजी, मैं सचमुच खा लूँ ?

भोला०—हाँ हाँ तू जाकर मेरी खीर खाले ।

गनेश—जो आज्ञा ! अहा ! आज मैं किसी अच्छे का मुख देख कर उठा था जो ऐसा भोजन मिल रहा है ।

[ कूदता जाता है ]

भोला०—मूर्ख ! कैसा हरिन की भाँति कूदता, जूये में जीते हुये जुवारी को भाँति हँसता गया है । मगर जब विष की गोली कलेजे में बैठ जायेगी तब वहीं टे' बोल जावेगा ! अपने गले में आप ही फाँसी लगावेगा—[ विचार कर ] परन्तु इस प्रकार एक निरपराध का प्राण लेना क्या मनुष्यता के विरुद्ध नहीं [ सोचकर ] नहीं २ अहंम सर्वसु—जब हम सब हैं तब जो चाहे करें कोई पाप नहीं लग सकता । क्या यह श्लोक केवल मेरे ऊपर ही घटता है ? और नहीं तो क्या—घटना घटाना तो मनुष्य के अधिकार में है । जिस पर चाहें घटा लें—इस वेद-वाक्य को जिस मुख से चाहे निकालें । बस चलूँ देखूँ कि खीर खाने से विचारे भोले भाले गनेश का क्या परिणाम होता है । अहा संशय ! तू ही ऐसी विद्युत पूभा है जो ज्ञानी को ठोकर खाने से बचाती है—मृत्यु के मुख से छुड़ाती है !

[ जाता है ]



### घनघोर जंगल ।

[ धर्म का लंगड़ाते हुए आना ]

धर्म—क्या मैं वही हूँ जिसके आदेश के अनुसार रहने से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर ने इतनी प्रशंसा पाई है ? क्या मैं वही हूँ जिसने राजा हरिश्चन्द्र, राजा दशरथ इत्यादि को इतनी ख्याति दिलाई है ? नहीं २ मैं वह नहीं हूँ और होऊँ भी तो मैं अवश्य बदल गया हूँ । यह इस नीच कलियुग के प्रभाव से ही मैं इतना दुखित और चंचल हो गया हूँ । पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन, ऊपर नीचे, दहिने बाँये जिस ओर दृष्टि डालता हूँ संसार की भयानक अवस्था दिखलाई देती है । जब इस अवस्था को सुधारने की चेष्टा करता हूँ तब मेरी आशाओं पर धूल उड़ती दिखलाई देती है । प्रकृति का जो सुन्दर सुहावना दृश्य था वह बिधवा नारी की भाँति रुदन करता दृष्टि आता है । जिन सरिताओं में अमीधारा बहती थी वहाँ अब लहू की फुहार बहती दिखलाई देती है जिस से मेरा हृदय पिघला जाता है । भगवन् ! तुम्हारे मुँह फिराते ही संसार में अंधेरा आगया । तुम्हारे मानवशरीर के त्यागते ही विश्व की ऊँची दशा पर कुहरा छागया । क्या

मेरी दशा न सुधारोगे ? इन पापियों के कारण जो मेरी कमर टूट गई है, क्या उसे सीधा कर मुझे कष्टों से न उबारोगे ?

रुदन हृदय यह कर रहा बिलखत प्रकृति विलाप ।

किसे पुकारूँ जाय प्रभु ! बेगि हरो संताप ॥

[ पृथ्वी रुदन करती आती है ]

पृथ्वी—भाई धर्म ! किसे बुलाते हो ? परमात्मा को ? अपने तारने वाले कर्तार को ? जिसने हमारी तनिक सी आह पर मनुष्यरूप धारण करके हमारे दुखों को हरा था ? उस भक्तवत्सल कहलाने वाले सरजनहार को ? उसने इस समय हमारी विनती न सुनने की कसम खाई है । भाई धर्म ! इस समय उस गोपाल ने भी हमारी सुधि विसराई है ।

धर्म—बहन पृथ्वी ! ऐसा न कहो, वह अवश्य सुनेंगे, वह दुःखभंजन हमारा अवश्य दुःख हरेंगे ।

पृथ्वी—कब सुनेंगे ? उस समय जब यह शरीर कष्ट सहते सहते नष्ट हो जायगा, कब दुःख हरेंगे ? उस समय जब इस अधमरे शरीर का नाम मात्र को सम्बन्ध रह जायगा ? खेत सूख जाने पर जब वर्षा आई तब क्या लाभ होगा । रोगी जब मर गया तब धन्वन्तरि भी आकर क्या करेगा ? यह शरीर अब अधिक और संताप नहीं सह सकता, यह मन अब अधिक धैर्य नहीं धर सकता । बस या तो अब परमात्मा हमारा नाश करे या इन संकटों से बेड़ा पार करे ।

हैं महिपाल जो आज बने वह महि पै नित दारुण दुखलावे ।  
जो रत्नक गोपाल बने वह कसाई के कर्म से पेट चलावे ॥  
मान सरोवर मुक्ता वो हंसहि को भक्षण कर जावे ।  
सुरपति जो पीयूष बरसावत वह अग्नि वृष्टी बरसावे ॥

धर्म—धैर्य धारण करो पृथ्वी ! हृदय में शान्ति स्थापन करो ।

पृथ्वी—क्या कहा, हृदय में धैर्य धारण करूँ ? जिस का हृदय टुकड़े २ हो रहा है, उस से कह रहे हो कि हृदय से शान्ति का काम लो ? जिन हाथों को अब हिलने की शक्ति न रही उन हाथों से कहते हो कि हृदय थाम लो ? भाई ! वह समय नहीं, वह बात नहीं, वह दिन नहीं, वह रात नहीं ! जिस की एक हाथ पर संसार में सूर्य की ज्योति नष्ट हो जाती थी । जिस की एक पुकार पर ब्रह्मा की भी शान्ति भ्रष्ट हो जाती थी वह आज इस प्रकार चिल्ला रही है, सारे शरीर पर रक्त को पानी बना के नेत्रों से बहा रही है ! फिर भी उसकी कोई नहीं सुनता, उन आसुओं को कोई नहीं देखता—[ रोती है ]

धर्म—भगवन् ! अब नहीं सहा जाता । इस विश्वम्भरा के दारुण कष्ट से हृदय पिघला जाता है । मैं तो केवल अपने ही दुःख से दुखी होकर रोता था, परन्तु इसको दुःखों के आगे मेरे दुःखों की विसात ही क्या है ।

हरो अब कष्ट को कि शांति से जीवन बितायें हम ।

जो गृह यह है गिरा जाता उसे फिर से बनायें हम ॥

( कलियुग नंगी तलवार लिए आता है )

कलियुग—किसी में है नहीं शक्ति जो इस गृह को बना डाले ।

किसी में है नहीं ताकत जो इसमें जीव तक डाले ॥

अगर कोई कहे आकर कि इसको मैं बनाऊँगा ।

तो उसका नाम तक संसार से मैं यूँ मिटाऊँगा ॥

धर्म—तू कौन ?

कलि०—मैं कलियुग, इस देश का राजा !

धर्म—इस देश का राजा ? और गाय रुपी वसुन्धरा को

कष्ट पहुँचाने वाला ?

कलि०—हाँ, इस देश का राजा, और इस बसुन्धरा के गले पर छुरी चलाने वाला ।

धर्म—तो धिक्कार है ! तुझ पर, इस देश पर, इस देश के कारोबार पर, इस देश के व्योहार पर । जिस देश में स्त्री के ऊपर हाथ चलाया जाये, जिस देश में गौमाता के गले पर छुरी या कटार बर्साया जाये ! वह देश नहीं, श्मशान है । वह स्वर्ग नहीं नर्क का केन्द्रस्थान है ।

पृथ्वी—[डरते २] अरे मैं वही हूँ जिसको लोग 'माता' कह कर पुकारते हैं, यदि मुझे नहीं तो मेरे उन पुत्रों की ओर देख जो मेरे नाम पर मरमिटे हैं, और अब भी मेरी इस हीन दशा पर करुणादृष्टि से निहारते हैं ।

एक वह है जिनने माता का है ऋण उऋण किया ।

एक वह है जिनने ममता में मेरे सिर दे दिया ॥

एक तू है जो कि माता को लगाता लात है ।

ऋण चुकाना दूध का क्या यह तेरा पदघात है ॥

कलि०—हाँ पदघात है, पदघात भी नहीं, इन नग्न तलवारों का घात है । तेरे इन स्तनों से दूध के बदले मैं रक्त की धारा निकालूँगा । तेरी महिमा के 'माता' यह जो दो अक्षरों का नाम है उसे मैं मिटा कर तहस नहस कर डालूँगाः—

धर्म—तू और माता के नाम को मिटायेगा ? तू क्या है यदि तेरी सारी पैशाचिक शक्तियाँ इस कार्य को करने का ठीका उठायें और प्रयत्न करते स्वयं नष्ट हो जायें तो भी यह दो अक्षरों का नाम जो नीच से नीच, तुझसे भी नीच मनुष्यों को पार लगाता है, यही वो दो अक्षरों का नाम है जिसको मरने

के समय पापी भी जप लेने से मोक्षपद पाता है । सदा अजर अमर रहेगा सब का नाश होगा, परन्तु यह जैसा है वैसा ही रहेगा ।

कलि०—ओह ! इन बिना मतलब के दो अक्षरों के नाम में इतनी शक्ति ?

धर्म—तू क्या जानेगा, माता के नाम में कितनी शक्ति है तेरे जैसा उष्ण हृदय वाला क्या पहचानेगा ? माता के नाम में जो अर्थ भरा है, वह किसी कोष में नहीं मिल सकता है, माता के नाम में जो अमृत भरा है वह इन्द्र के भण्डार में भी नहीं मिल सकता । माता का नाम उस बंदरगाह का काम देता है जो डूबते हुये को सहारा देता है । माता का नाम दुःख से जले हुए हृदय को ठंडक पहुँचाता है, माता का नाम उच्चारण करने से कानों को स्वर्ग के संगीत से बढ़ कर आनन्द आता है ! माता के नाम लेने से पशु भी वश में हो जाता है, रोगी जब 'माता' कह कर अपने दुःख को प्रकट करता है तब उसका सारा दुःख अमृत सरोवर में डूब के गल जाता है, वह शान्ति पाता है । माता के नाम को पाकर स्वयं जगदीश्वरी गौरी भी अपने को धन्य समझती हैं । माता के नाम ही से यह पृथ्वी जिसे तू आज ठोकरी से मारता है, पवित्र होती है । अब भी सम्भल जा, इन माता पुत्र के पवित्र व्यवहारों को कलुषित न बना । यह नाता सब नातों से पवित्र है, इसे मिटाने का प्रयत्न करके स्वयं अपने आपको न मिटा । यदि महाराजा कहलाना है तो माता की महिमा का जान और इस जगद्गजनी वसुन्धरा के चरणों पर शीश झुका ।

पृथ्वी—यदि महाराज बनना है तो प्रजा के हृदय में प्रेम उत्पन्न कर, यदि सुख पूर्वक राज्य करना है तो प्रजा के दुःख



से दुखी और सुख से सुखी होकर जीवन व्यतीत कर, यदि राजा कहलाना है तो प्रजा पर अत्याचार न कर । यदि शान्ति पूर्वक शासन करना है तो प्रजा से पोट के बदले दोनों भाग अनाज का लेकर या उनसे उनकी संतान बिकवा कर या उनका रक्त बहा कर उनसे कर वसूल न कर । यदि संसार के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों से लिखवाना है तो प्रजा को अत्याचार तथा अहंकार की छुरी से हलाल न कर—

तो फिर देखेगा तेरा राज्य ये ऐसा हरा होगा ।

प्रजा सुख से रहेगी गृह भी लक्ष्मी से भरा होगा ॥

तुझे सब न्यायकारी जान के नरपति बुलावेंगे ।

तेरा कल्याण चाहेंगे तेरा गुण गान गावेंगे ॥

धर्म—नहीं तो देश ये लक्ष्मी रहित, दुख रोग पायेगा ।

जो यह है स्वर्णभूमी देश वो मरघट कहायेगा ॥

कलि०—लिथा है जन्म मैंने देश को मरघट बनाने को ।

बुती है आग जो इस देश में उसको लगाने को ॥

प्रजा मेरी मरे जीये, नहीं इस बात की चिन्ता ।

मेरा उद्देश्य है निर्बल पै बल को अजमाने को ॥

धर्म—क्या इन्हीं बातों से तू विख्यात होना चाहता है ?  
क्या जा के गले पर अत्याचार की छुरी चलाकर नाम पैदा करना चाहता है ?

कलि०—यहाँ प्रशंसा मिले या अपमान, दयावान की पदवी मिले या निर्दयता की खान, परन्तु तेरे ऐसे लोगों को—जिन्होंने मनुष्यों की बुद्धि को बिगाड़ दिया है, उन्हें संसार में धर्मात्मा कहलया कर मेरी मर्यादा के जड़ को उखाड़ दिया है, उनका अवश्य नाश करूँगा और यदि यह कर्म पाप में गिना

जायेगा तो ऐसे ही पापों का विकाश करूँगा, परन्तु तेरा और [ पृथ्वी को दिखाकर ] इसका जड़मूल से सत्यानाश करूँगा ।

न तू होगा न ये होगी, मुझे तब चैन आयेगा ।

तुझे गिरते हुए देखूँगा मन आनन्द पायेगा ॥

धर्म—क्या नीव को मिटाकर घर बनाना चाहता है ?  
स्त्री को सताकर विश्व में महाराजा कहलाना चाहता है ?

पृथ्वी—सागर से शत्रुता कर के उसमें जहाज चलाना चाहता है ? सूर्य को जीतने के लिए उससे आँख मिलाना चाहता है ?

धर्म—संभल जा, अब भी संभल जा, अबला की हाव निकलने का समय न दिला, यदि संसार में शांति से रहना चाहता है तो इसे प्रसन्न बना कर इसके मुख से आशीष के वाक्य निकलवा ।

पृथ्वी—जिसके प्रताप से आज तक संसार खड़ा हुआ था, उसे रुष्ट न बना, जिससे बुराई कर के इन्द्र ने भी हार मानी थी उससे शत्रुता करके अपनी मूर्खता न जता ।

कलि०—नहीं तो क्या होगा ?

धर्म—यह रावण की दशा को स्मरण कर के स्वयं जान ले । बालि की दशा याद करके उसके परिणामों को पहिचान ले । सोता की एक हाथ ने रावण के वंश को फूँक डाला, सुग्रीव-पत्नी की एक हाथ ने बालि का मर्यादा, प्रताप, जीवन तक को जला के राख बना डाला ।

कलि०—वे मूर्ख थे—

यदि मैं लंकपति होता तो साता को दिखा देता ।  
तनिक सी देर में उसके सतीपन को भगा देता ॥

वो बाली भी गधा ही था कि जिसने जान यों खोया ।

अगर वो चाहता तो राम के छुके छुड़ा देता ॥

पृथ्वी—भगवन् ! क्या आप स्त्री का इतना अपमान सुन सकते हैं ? अशरण शरण ! क्या आज नारि को इतनी अप्रतिष्ठा नेत्रों से देख सकते हैं ?

पड़ी जब आपदा सीता पै उनका दुख छुड़ाया है ।

किया जब ध्यान नरपत्नी ने तब साड़ी बढ़ाया है ॥

दिया जब दण्ड सुरपति को इसे अब क्यों नहीं देते ।

मेरे भगवान ! क्यों अपमान का बदला नहीं लेते ॥

कलि०—भगवान को नहीं. अब मुझे पुकार ।

[ परीक्षित अचानक आ जाते हैं. और इन सब की बात चीत सुनकर एक ओर खड़े हो जाते हैं ]

मेरे अतिरिक्त इस समय तुझे कोई भी जीवन दान नहीं दे सकता है । इस समय कोई भी वीर ऐसा इस पृथ्वी पर नहीं है जो तुझे अभयदान दे सकता है ।

धर्म—देगा, और अवश्य देगा । वह सदा देता आया है और आज भी देगा । वह सदा हमें बचाता आया है और आज भी बचायेगा ।

पृथ्वी—वह सदा हमारी लाज की रक्षा करता है और आज भी हमें इस आपदा से छुड़ायेगा ।

कलि०—वह कौन है, वह कहाँ है ?

पृथ्वी—वह ईश्वर, वह यहाँ है, वह वहाँ है ।

धर्म—वह आकाश में वास करता है, वह पृथ्वी पर निवास करता है ।

अंधेरे में उसकी ज्योति देखी उजाले में उसका रूप देखा ।

लगाई लव जब किसी ने उससे प्रभाव उसका अनूप देखा ॥



कहीं प्रगट है कहां छिपा है कहाँ बतायें कहाँ कड़ा है ।

स्वयं हृदय में जो दृष्टि डालो उसी में उसका स्वरूप देखा ।

पृथ्वी—

कहाँ हो, धात्रो, जगत् के स्वामो ! तनिक इत्ने ज्ञात तो हो जाये ।

अकड़ रहा है जो नारि पर अब वो दण्ड अपने किये का पाये ॥

कलि०—[ क्रोध से ] मूर्खों !

अब तक तो मैं शान्त था तनिक किया नहिं ध्यान ।

छुट के जावोगे कहाँ लूं दोनों का पूरण ॥

[ पृथ्वी को पकड़ कर उसके बाल पकड़ उसे पटक देता है ।

राजा परीक्षित प्रगट होकर कलियुग को रोकते हैं ]

परीक्षित—बस सावधान ! यदि तनिक भी हाथ हिलाया तो ध्यान रखना कि मेरा शस्त्र तेरे कलेजे में समाया ।

कड़ी आखों से जो इन को कोई अब ताक भी लवे ।

मेरा ये शस्त्र उन आखों को सिर को राख कर देवे ॥

बना है वीर फिर नारी का यं तू रक्त पीता है ।

भुला डाला कि अर्जुन वंश में एक वीर जीता है ॥

कलि०—तू कौन है मेरे बीच में बोलने वाला ?

परी०—तेरे इस घमण्ड को चूर करने वाला । जो हाथ इस अबला पर उठे थे उन्हें इस शरीर से अलग करके फेंक देने वाला । जो नेत्र एक स्त्री को कड़ी दृष्टि से देखते थे उन आँखों को निकाल कर तुझे अन्धा बनाने वाला !

कलि०—जा जा, यदि शीश की कुशलता चाहता है तो लौट जा !

परीक्षित—बस २ अधिक न बलबला. और यदि जीना चाहता है तो जीवन बचा कर भाग जा ।

मैं भयंकर बज्र वर्षाऊँगा तेरी जान में ।

काट के अरु फेरूँ दूँगा शीश को इक आन में ॥

मैं हूँ क्षत्री वंश में अरु धीर जननी पुत हूँ ।

है अभी शक्ती मेरे इस खड्ग में अरु बान में ।

कलि०—क्यों बजाता है वृथा अब गाल को जा भाग जा ।

क्यों बुलाता है तु अपने काल को जा भाग जा ॥

परीक्षित—एक सिंह एक गीदड़ की आवाज सुन कर  
भाग जाये ? एक वीर एक कायर के कहने से यहाँ से  
पयान कर जाये ?

कलि०—तू मुझे एक मूर्ख ज्ञात होता है ।

परीक्षित—और तू मुझे एक नीच प्रतीत होता है ।

कलि०—बस मैं कहता हूँ कि जिन्हा संभाल !

परीक्षित—मैं भी कहता हूँ कि इन पगों को पीछे डाल ।

कलि०—तो क्या तू यहाँ से न जायगा ?

परी०—एक क्षत्री का पुत मरते मरते मर जायगा, परन्तु  
एक अबला की लाज अवश्य बचायेगा ।

है उठाता हाथ अबला पे महा चरडाल है ।

सोच ले सिर पै तेरे अब धूमता बस काल है ॥

कलि०—बस संभल जा, ले बचा अब तू मेरे इस वार को ।

परी०—ध्यान तू भी कर ले मेरे खड्ग के संहार को ॥

[ दोनों लड़ने हैं, परीक्षित पछाड़ कर कलियुग को पटक देते हैं  
और उसकी छाती पर चढ़ बैठते हैं ]

बोल, ओ घमण्ड के पुतले, बोल, ओ पानी के बुल-  
बुले, बोल !

कहाँ गई वह पेंछ कहाँ वह शान गई अब ।

कहाँ गई वो आन कहाँ वो बान गई अब ॥

धर्म—देखा योधा कौन है कौन हुआ लाचार ?

कौन समर विजयी हुआ किस ने खाई हार ?

कलि०—क्षमा करिये, मेरे अपराधों को क्षमा करिये ! मैंने अपने कर्मानुसार दण्ड पाया, जो कुछ अत्याचार किया उस का परिणाम सामने आया ।

परी०—नीच ! भीरु ! जब अपराध के दण्ड पाने का समय आया तब कायरों की भांति रोने लगा ! स्त्रियों की भांति आँसुओं से मुख को भिगोने लगा । श्रीकृष्ण भगवान् अंतर्ध्यान हुए, यो मेरे पूजनीय दादा गाण्डीवधारी अर्जुन बैकुण्ठ गये; इस हेतु संसार को बिना राजा के समझ स्त्री और निर्बलों पर हाथ उठाने लगा । जो धर्म के पक्षपाती हैं, उन्हें कष्ट पहुँचाने लगा ।

न जाना अंत तूने अपने इन भारी प्रलापों का ।

न आया ध्यान कुछ तुझको कभी परिणाम पापों का ॥

धर्म—बेटा परीक्षित !

परी०—महाशय ! आप कौन हैं ? कहाँ वासस्थान है क्या नाम है ?

धर्म—बेटा ! मैं धर्म हूँ । यह गाय रूपधारिणी जो स्त्री है वह पृथ्वी है । हम दोनों इस कलियुग के अत्याचार से घबड़ाये हुए भागे जा रहे थे । तुमने आकर हमारी लाज बचायी । इसे उपयुक्त दण्ड दे कर नीचा दिखाया । अब इसे छोड़ देने में ही बड़ाई है । शत्रु ने जब मुख में तिनका दबा कर त्राहि शब्द निकाला तब उसे जीवनदान देने ही में क्षत्रियों की प्रभुताई है । अब मेरी आज्ञा शीघ्र पर धारो, इसे जान से न मारो ।

परी०—जो आज्ञा ! आप की आज्ञा शिरोधार्य है ।

[ कलियुग को उठा कर और उसे ठोकर मार कर ] आज तुम्हको अपने कुलपूज्य देवता के कहने से छोड़ देता हूँ; तेरे सिर को तन से अलग करने से मुख को मोड़ लेता हूँ । जा मेरे राज्य से अपनी जान बचा कर भाग जा; अपना यह काला मुख फिर इस देश में न दिखला !

कलि०—महाराज ! जब सागर के एक कोने से दूसरे कोने तक आप का राज्य है, जब पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक आप का साम्राज्य है तब मैं भला इसे छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? अपने रहनेका कृपानाथ ! आपही बतलाइये कौन सा निवास स्थान बनाऊँ ?

परी०—बस यह सब मैं कुछ नहीं जानता । यदि जीवन-दान चाहता है तो मेरी आज्ञा उल्लंघन न हो, इसका सदा ध्यान रहे ।

कलि०—महाराज ! आप धर्मात्मा वो न्यायकारी हैं । कृपया आपही इसको बिचारिये, कि जब ब्रह्मा ने सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगों को निर्माण किया है तब वह भला कैसे अमिट हो सकता है । सत्ययुग, त्रेता, द्वापर अपना राज्य भोग कर चले गये; अब मेरे शासनकाल का समय आया है और आप मुझे आज्ञा देते हैं कि मैं चला जाऊँ, परन्तु जाऊँ कहाँ ?

जिधर घुमाता दृष्टि उधर है राज्य तुम्हारा ।

प्रभू बताओ, अन्य मुझे दे कौन सहारा ॥

दिया जो जीघन दान, मान अब आप बचाओ ।

पड़ा रहूँ मैं यहीं, यही आदेश सुनाओ ॥

परी०—नहीं मैं तुम्हें अपने देश में रहने की आज्ञा नहीं दे सकता । जिस देश में मनुष्य यज्ञ, तप, दान धर्म व्रत तथा



परमेश्वर का पूजन करके मुक्तधाम को जाते हैं, जहाँ सदा काम क्रोध लोभ मोह इत्यादि पाँचों विकारों को त्याग कर शान्ति प्राप्त करने में जीवन बिताते हैं, वहाँ तू रह कर विघ्न करेगा; तेरे रहने से यहाँ पाप अधिक बढ़ेगा ।

कलि०—पृथ्वीनाथ ! आप मेरे अवगुणों की ओर ध्यान देते हैं, परन्तु मुझ में जो गुण है उन्हें नहीं देखते हैं । सत्ययुग में जिस राज्य में एक मनुष्य पाप करता था उस राज्य भर के मनुष्य दण्ड पाते थे । त्रेता में एक मनुष्य के अपराध करने से गाँव भर के लोग दंडित किये जाते थे । द्वापर में अधर्म करने से परिवार भर को शासत होती थी । परन्तु मेरे राज्य में जो मनुष्य जिस अंग से पाप करता है, उसके उसी अंग को दण्ड दिया जाता है, दूसरे युगों में मानसी पाप करने से मनुष्य दण्ड पाता था, परन्तु मेरे राज्य में मानसी पाप न होकर मानसी पुण्य का फल मिलता है, और सुनिये, दूसरे युगों में हजारों वर्ष तप यज्ञ करके तब मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते थे; परन्तु मेरे राज्य में जो कोई एक क्षण भी ईश्वर का नाम जप लेगा, उन्हें अन्तःकरण से स्मरण कर लेगा, उस के सारे अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं और उसके अनेक पाप धूल की भाँति धुलकर स्वच्छ पारस बन जाते हैं ।

है बुराई से अधिक जब गुण का फल मुझ में भरा ।

क्यों न मुझको अभय हो फिर क्यों न मुझपै हो दया ॥

विश्व में गुण और अवगुण का सदाही साथ है ।

है कहीं मरुभूमि तो कहीं खेत है जलशय हरा ॥

नामधारी आप हैं फिर आपही बतलाइये ।

मैं रहूँ किस ठौर यह सब आपही समझाइये ॥

परी०—कलियुग ! तेरी इस विनती पर मुझे दया आती



है । जा, मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू जुआखाने में, मदिरा खाने में, वेश्या के भवन में, जिस स्थल पर जीवहिंसा होती है उस स्थान में वास कर, वहाँ ही अपने प्रभाव का विकास कर, जहाँ सुम रहते हों, जहाँ सोने का भण्डार हो, वहाँ पर अपने प्रभाव का प्रकाश कर ।

कलि०—( स्वगत ) वह मोरा ! मेरे बदला लेने का समय अब आया । सोने में वास करने का आदेश इस मूर्ख राजा ने मेरी इच्छा के अनुसार सुनाया । ( प्रगट ) जो आज्ञा ! आप के आज्ञानुसार मैं आप के बतलाये हुये स्थानों में निवास करूँगा । वहाँ ही सकुटुम्ब वास करूँगा !

( तत्क्षण आकाशवाणी होती है )

आकाश०—राजन् ! कलियुग के हाथों तुमने बाजी हार दी । उसे अपनेही घर में वास करने की आज्ञा दे कर अपने पावों आप कुल्हाड़ी मारली ।

परी०—हैं, यह कैसी आकाशवाणी ? क्या सचमुचही मैंने अपना विनाश किया ? क्या यथार्थ ही मैंने कलियुग को अभय दान देकर अपने कर्म धर्म का नाश किया ?

( सब अस्ममित होते हैं, कलियुग मुस्कराता है । सहसा पीछे का परदा फूट जाता है, परीक्षित की आत्मा सोती हुई दिखाई देती है, वह कलियुग पास के रखे स्वर्ण-मुकुट में वास करता है, इसी अवसर पर )

‘टेबला’



डाप ।



मार्ग ।

( चार साधुओं का गाते आना )

गाना ।

साधु—

कौन बचावो जग को अबतो कलियुग आयो है ।  
 काम क्रोध अरु लोभ को जड़ को याने बिछायो है—रामा क०—  
 धर्म कि रीति भई अब उल्टी अधर्म धायो है, रामा०—  
 पूजा पाठ तजो सबने अब पाप कमायो है, रामा कलि०—  
 नगर सगर को तज के भैया मन मचलायो है, रामा कलि०—  
 आनन्द है ब्रह्मानन्द बिन नहिं धर्म नसायो है, रामा कलि०—

१ सा०—जहां उँजाला था दिवस भई अंधेरी रात ।

धर्म खड़ा अब रो रहा कोई न पूछत बात ।

२ सा०—कलियुग को है आगमन नष्ट भयो संसार ।

तब धर्मी पापी बने धर्म को कहाँ आधार ।

३ सा०—भाई ! अब इस संसार से चिरा हटानेही में  
 भलाई है, जब कलियुग के प्रभाव ने अपनी प्रभुता जमाई है,  
 जब धर्म की लड़ाई में कलियुग ने विजय पाई है, तब यह रूप  
 भी पखंडी के नाम से भूषित होगा, जो पापी होंगे उनका  
 मान बढ़ेगा, जो धर्मात्मा होंगे उनका प्रभाव घटेगा ।

४ सा०—इस हेतु हमारा विचार है कि इस देश, इस



नगर, इस राज्य को त्याग कर किसी विद्यावान जंगल में अपने रहने का निवासस्थान बनायें, वहाँ ही रह कर उस प्रभु की लीला का गुण गानकर अपने जीवन के उद्देश्य को संपूर्ण बनायें ।

१ सा०—और वहाँ चलकर उस प्रभु के ध्यान में लीन हो जायें ।

२ सा०—अहा ! क्या ही उत्तम विचार है ।

३ सा०—जगदीश्वर की लीला के वर्णन करने में आनन्द अपार है ।

( साधुओं का गमन—दो सैनिकों का प्रवेग )

१ सै०—रामसिंह ! आज पुनः महाराज ने आखेट में चलने की आज्ञा सुनाई है, जो बात बहुत दिवसों तक लुप्त हुई सी ज्ञात होती थी, वही अब पुनः जगमगाई है ।

राम०—हाँ भाई लक्ष्मणसिंह ! माता दुर्गे की जीभ बहुत दिनों से पशुओं के रक्त पीने के हेतु लपलपाई थी, उसी को तृप्त करने की यही शुभ घड़ी आई है ।

लक्ष्म०—अच्छा तो आपकी सब सेना तय्यार है ?

राम०—हाँ, हर एक सिपाही, सवार, शस्त्र हथियार सब तय्यार है ।

लक्ष्म०—तो फिर क्या विलम्ब है ?

राम०—केवल महाराज की आज्ञा का अवलम्ब है ।

लक्ष्म०—तो आप सिधारिये, सेना के संग नगर की सरहद की ओर पधारिये, मैं महाराज की सवारी के साथ आता हूँ ।

राम०--बहुत अच्छा, मैं अभी जाता हूँ, सेना को सजाकर  
प्रस्थान का डंका बजाता हूँ ।

( दोनों का जाना )



भिंडी ऋषिश्वर की कुटी ।

( ऋषि का आँख मूँदे तप करते दिखाई देना, आगे एक हिरण  
भागा जाता है, राजा परीक्षित उसका पीछा करते आते हैं  
हिरण को अदृश्य हुआ जान और साथियों के छूट  
जाने से घबड़ाते हैं )

परीक्षित—यह घोर बन ! यह कड़ी धूप, यह आँधी, यह  
तूफान, इन सब की चिन्ता न करके केवल एक हरिण के पीछे  
अपने सब साथियों का साथ छोड़ के यहाँ तक भटकता हुआ  
चला आया, हरिण भी अदृश्य हो गया, और मारे गरमी के  
तृष्णा से जो घबड़ा गया । न पास में कोई कुवाँ ही है न झरना,  
जिससे मैं दो घूँट पानी पीकर प्यास बुझा लूँ, मारे गरमी के  
होंठ सूखे जाते हैं । आँखों के आगे अंधेरा प्रतीत होता है । सिर  
चकराता है । हृदय घबड़ाता है ( चारों तरफ देख के ) पास में  
कोई दिखाई भी नहीं देता कि जिससे मैं दो घूँट जल के लिए  
प्रार्थना करूँ, ( भिंडी ऋषि को देखकर ) अहा, वह सामने कोई

ऋषि बैठे तप कर रहे हैं, उनसे अपनी याचना पूर्ण होगी, दो घूंट जल मिलेगा, तृष्णा निवारण होगी। बस अब चलना चाहिए, ( पास जाकर ) ऋषिश्वर ! मैं अर्जुन का पौत्र परीक्षित आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ और तृष्णा से व्याकुल होने से थोड़े जल की प्रार्थना करता हूँ। ( कुछ उत्तर न मिलने से ) महाऋषि ! मैं अभिमन्युपुत्र हस्तिनापुर का राजा आप से दो घूंट जल की भिक्षा मांगता हूँ ( ऋषि के तप में निमग्न रहने तथा कोई उत्तर न मिलने से ) ऐ ऋषि ! मैं इस देश का राजा आप के पास अतिथि स्वरूप आया हूँ और आतिथ्यसत्कार में दो घूंट जल मांगता हूँ। ( फिर भी उत्तर नहीं ) हैं, मैं इतना चिन्ना रहा हूँ, इतनी प्रार्थना से अपना कण्ठ सुखा रहा हूँ, परन्तु कोई उत्तर नहीं, ? ( युकार कर ) ऐ ऋषि ! मैं इस देश का राजा होकर आप से थोड़े जल की याचना करता हूँ ( कोई उत्तर नहीं ) ऋषि ! मैं तुम्हें राजाज्ञा देता हूँ, कि इसी समय नेत्र खोलो, और मुझे दो घूंट जल पिलाकर मेरी तृष्णा शान्त करो, ( कोई उत्तर नहीं ) ऐ ऋषि ! मैं पुनः कहता हूँ कि राजाज्ञा मानों मेरा प्रभाव जानों। ( कोई उत्तर नहीं ) हैं ! मैं इतना चिन्ना रहा हूँ। परन्तु कोई उत्तर नहीं ? मैं सातों द्वीप का राजा होकर एक भिखारी से पानी माँग रहा हूँ, परन्तु वह कुछ उत्तर देने की बात तो दूर रहे नेत्र तक नहीं खोलता, ( जोर से ) मैं एकवार अंतिमवार पुनः कहता हूँ कि नेत्र खोलकर मुझे पानी पिला मेरी प्यास बुझा ! ( कुछ उत्तर नहीं ) हैं, पुनः वही सन्नाटा ? क्या तू नहीं जानता कि यदि अभी उत्तर नहीं दिये तो मैंने तेरा शीश काटा ! अच्छा न बोल अभिमान के घमण्डी पुतले ! अपनी आँखें न खोल, परन्तु मैं यह उद्दण्डता नहीं देख सकता, तुझे दण्ड दिये बिना नहीं रह सकता, ( स्वयं ) क्या इसका शीश

उतार लूँ ? ( सोचकर ) नहीं २ चाहे यह कितना ही दुष्ट क्यों न हो, फिर भी यह ऋषि के भेष में है, इसका सिर काटना अनुचित है, ( पास में एक मरा हुआ सर्प देखकर ) बस इस मरे हुए सर्प को दण्ड स्वरूप में इसके गले में डालनाही उचित है, ले मूर्ख बुड्ढे ! अपने किये परिणाम का फल भोग, राजाज्ञा न मानने का दण्ड भोग !

कुछ न ध्यान आया कि इक राजा खड़ा है पास में ।

कुछ नहीं चिन्ता कि वह जल माँगता है प्यास में ॥

मान है पदवी का कुछ नहीं बस यही की जांगले ।

जब किया यह पाप तो मूर्ख तू ले दण्ड भोग ले ॥

( राजा ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डालकर चले जाते

हैं, शृंगो ऋषि आते हैं )

शृंगी—आज ऋषिबालकों के साथ खेलने में बहुत समय बिताया, पिता की सेवा का कुछ ध्यान न आया, परन्तु अभी तक पिताजी समाधि में मग्न हैं ! जगदीश्वर के ध्यान ही में निमग्न हैं । ( पास जा और सर्प को देखकर ) हैं ! परन्तु इनके गले में मरा हुआ सर्प कैसा ? किस दुष्ट ने यह काम किया, किस नीच ने यह अपमान किया ? क्या ब्राह्मणों की महत्त्वता इतनी निर्बल हो गई ? क्या ऋषियों की प्रबलता इतनी दुर्बल हो गई ? कृष्ण भगवान के स्वर्ग पधारतेही नीच राजा राज्य तथा धन से अंधे होकर ब्राह्मणों को सताने लगे, ऋषियों को वेदना पहुँचाने लगे, जिस प्रकार द्वार अगोरने वाला कुन्ना स्वयं स्वामी को काट कर यज्ञ की थाली में डाल दे उसी प्रकार यह नौकर समान राजा जो गो ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिये नियुक्त किये गये हैं अब उन्हीं की कृपा वो आशीर्वाद से राज-गद्दी पर बैठकर, उन्हीं पर अत्याचार करने लगे, ब्राह्मणों पर



अनाचार करने लगे, तो क्या यह नीच कर्म करने वाला दण्ड न पायेगा ? नहीं २ अवश्य पायेगा, और वह भी ऐसा कि विश्व में रक्ताक्षरों से लिखा जायगा । नीच ! कुमार्गी, पापी जिसने यह नीच कर्म किया है; जिसने मेरे पिता का अपमान किया है, जिसने राज्यधर्म भंग किया है, भारतनरेश के नाम को अप्रतिष्ठित किया है, उसी दुष्ट को, उसी राजा परीक्षित को आज मैं दुःखित मन से श्राप देता हूँ कि आज से ७ वें दिन उस तक्षक सर्प डसेगा, उसका विनाश करेगा ।

यही है श्राप मेरा जिस से तू अब दण्ड पायेगा ।  
तेरे अब पाप का परिणाम तुझको याद आयेगा ॥





मकान ।

( गणेश भोलानाथ के गृह से भोजन कर डकारता आता है )

गणेश—अहा ! प्रेम-प्रेम ! तू वो चाहत है जिस की प्रशंसा मैं इन्द्र ने भी अपने को तल्लोन बना दिया, भगवान् शूनपाणि ने तेरे ही आधार पर विष पान कर नीलकण्ठ नाम ग्रहण किया । प्रेम और वह भी स्त्री का प्रेम ? फिर तो मानो अंधे को आँखों के साथ दिव्य ज्यांति का प्रदान हो गया और वह भी मेरे जैसी प्रेमिका पाने पर तो सातों स्वर्ग का मान हांगया । अहा ! आज ही प्रेमपाठ की वर्णमाला में अवतीर्ण हुआ और आज ही द्राक्ष की खीर और वह भी दूध में—और खातेही यह प्रभाव कि प्रेमिका का संदेश कि प्राणनाथ ! शीघ्र दर्शन देना—जल्दी सुधि लेना ! बस अब तो जीवन भर प्रेम का मन्त्र जपूंगा और अन्त समय भी राम नाम के बदले प्रेमही मन्त्र जपता मरूँगा ।

प्रेम मन्त्र का जाप करोगे जीवन सुफल बनाओगे ।

प्रेम विमान पै बैठ के निश्चय भवसागर तर जाओगे ॥

( गणेश की प्रेमिका चमेली आती है )

चमेली—कौन खड़ा है ?—

गणेश—कौन ? मैं ! कामदेव की रति-विष्णु की लक्ष्मी-महादेव की पार्वती—याने-याने-मेरे प्रेम दंगल की मेरी प्यारी-



यहाँ तो मैं हूँ—प्रेम के अस्तबल का घोड़ा—प्रेम खजाने का तोड़ा—प्रेमिका के प्रेम का जोड़ा—

चमेली—कौन प्यारे ! तुम आगये ?

गनेश—हाँ प्यारी ! तू बुलाये और मैं न आऊँ ? जिस समय तेरा पत्र—नहीं २ भूला, तेरी प्रेमपत्रिका मिली—मेरे हृदय की कली जो प्रेममन्त्र जप कर द्राक्ष की खीर से सीची जा रही थी एकदम से खिल गई—बस तुरंत प्रेम का पुजारी प्रेमवत्सल वहन—प्रेमविमान पर बैठ—प्रेम के अर्घ्य पुष्प लेकर प्रेम मंदिर में प्रेम देवी की आराधना को आगया —

चमेली—प्यारे ! आप का मुझ पर इतना प्रेम है यह जान कर मैं धन्य हो गई—

गनेश—नहीं २ वरन् ऐसा कहो कि तुम्हारा मेरे जैसे एक हाड़माँस के पिंजर पर ऐसी नजर लगी है यह देख कर यह बलिदान का बकरा प्रेम देवी पर निलगावर होने के लिये प्रेम खड्ग से अपनी गरदन कटता देख मगन मन होरहा है ।

चमेली—तो क्या तुम मुझे कोई डायन समझते हो ? मैं तुम्हारे हाड़ माँस पर नजर लगाये हुये हूँ ?

गनेश—डाइन ? अरे राम २ ! फिर भी यदि तू डाइन है तो मैं भूत हूँ ।

चमेली—जाओ जो जाओ, तुम तो निपट जंगली हो ।

गनेश—अरे प्यारी ! जंगल ही की लकड़ियों से चंदन पाया जाता है—खारे जल सेही मोती निकाला जाता है—खार ही चेहरे पर निमक लाता है, जिसे देख कर महा विद्वानभी जंगली कहाता है । बस आओ, गले लग जाओ, प्रेम का अ—आ—इ—ई—पढ़ चुका अब क—ख—ग—घ पढ़ाओ—

चमेली—अच्छा २ बहुत न पढ़ जाओ—सुनो आज माता

पिता ने मेरे व्याह की अनुमति लेनेको तुम्हें बुलाया है । चलो  
 वो भीतर हैं—तुम्हारी राह तकते हैं—उनसे सब ठीक करलो ।  
 शास्त्रानुसार मुझे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनालो । फिर जो आह्वा  
 करोगे यह दासी तैयार है ।

गनेश—बाह रे प्रेम ! तेरी महिमा अपा है—आज तो प्रेम  
 उत्साह है—चट प्रंगनी वो पट विवाह है—प्रेम—प्रेम—प्रेम—  
 तेरा बड़ा ही मीठा पूवाह है—

चमेली—

गाना ।

कोइलिया प्रेम की राग सुनावे—

पापी पपैया पियु पियु बोले—मन मेरा कलपावे—मोहें०—

गनेश—कर आराधना प्रेम मन्दिर पर प्रेमी बैठा आय—

वही पपैया इस कारण से पिया पिया कह गाय—कोइलि०—

चमेली—आओ सजनवां प्रेम हिडोल पै बैठे वो भूले—

प्रेम के जल से प्रेम के बल से—खिलके हम फूलें—कोई—

( दोनों जाते हैं )





भिंडी ऋषि की कुटि का एक भाग ।

( भिंडी तथा शृंगी ऋषि का आना )

भिंडी—अबोध बालक ! तूने यह क्या किया ? ऐसे धर्मात्मा राजा को जिसके राज्य में मिह और गाय एक तीर नौर पीते थे ऐसा कठिन श्राप क्यों दिया ?

शृंगी—पिता जी ! जब उसने मेरे पूजनीय पिता का ऐसा अपमान किया, आपके गले में मृत सर्प डालकर मानहानि किया तो भला मैं अपने क्रोध को कैसे रोक सकता था ? उसे श्राप दिये बिना कैसे रह सकता था ?

भिंडी—नादान ! क्रोध शब्द का संबंध एक ब्राह्मणलाल के साथ ? गंगा की धारा का संबंध अग्नि की ज्वाल के साथ ? जिस ब्राह्मण में काम क्रोध मद मोह लोभ इन पाँचों विकारों का बास है, जिस ब्रह्मपुत्र को इनके प्रयोग का अभ्यास है, वह नाम मात्र का ब्राह्मण है, कर्म का नहीं । केवल पुकारने को ब्रह्म श्र है, धर्म का नहीं !

होके ब्राह्मण पुत्र अरु क्रोध करे मन मांहि ।  
ऐसे ब्राह्मण शूद्र सम जग में लेखे जाहि ॥  
जग में लेखे जाहि उन्हें कोई ब्रह्म न माने ।  
चारों पद से गिरा उन्हें सब नीचा जाने ॥



जन्मे ऐसे ब्रह्म उन्हें क्या मान मिलेगा ।

मानकी पूछे कौन उन्हें अपमान मिलेगा ॥

शृंगी—पिता जी ! आपका ऐसा अपमान देख कर मैं क्रोध में मदांध हो गया, राजा को श्राप देते समय अपनी पद-वी का ध्यान खो गया ।

भिंडी—पुत्र ! जिस प्रकार यदि कोई चोर चोरी करे, यदि कोई अधिक हत्या करे तो उसका इतना अपराध नहीं है, जितना कि उच्च वंश का होकर, ऊपर से शान्ति स्वरूप धारण कर अपनी महत्ता के विरुद्ध, अपने कर्म के प्रतिकूल कार्य करे उन अपराधों से हाथ भरे ।

कर्म हो अच्छा यदि हो वंश नीचा दुख नहीं ।

धर्म में पक्का हो कुछ चिन्ता नहीं जग सुख नहीं ॥

ऐसे मानुष की वहाँ पर पूछ है सत्कार है ।

पर जो ऐसा है नहीं वह धर्म का भूभार है ॥

हो न ऊपर से रंगा पर चित्त निर्मल चाहिए ।

हो न स्वाती बूँद पर जलधार अविरल चाहिए ॥

शृंगी—पिता जी ! अब मुझे अपने किये पर स्वयं पश्चात्ताप हो रहा है । अब मेरा अन्तःकरण, अन्दर ही अन्दर धैर्य खा रहा है ।

भिंडी—बैकुण्ठनाथ ! मेरे अज्ञान बालक का अपराध क्षमा करिये ( शृंगी से ) बेटा ! जो राजा गौ तथा ब्राह्मण की रक्षा करता है उसे मारने का पाप दस ब्रह्महत्या के तुल्य होता है । परन्तु पश्चात्ताप भी पाप निवारण का एक मुख्य कारण है । इस हेतु, जब तुम्हारे मन में अपने किये का पछतावा उत्पन्न हुआ तो समझना चाहिए कि पाप का भी क्षय हुआ । अब



कुमुर्क को बुलाकर राजा परीक्षित के पास यह समाचार पहुँचाना चाहिये, उनको मुक्ति लाभ का मार्ग बताना चाहिए ।

शृंगी—इस हेतु आप जो आज्ञा करें, यह दास वह करने को तय्यार है ।

भिंडी—बेटा, तुम जाओ और कुमुर्क को यहाँ भेज दो और परमात्मा से राजा परीक्षित की आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करो ।

शृंगी—जो आज्ञा ! ( शीस झुकाकर चले जाना )

भिंडी—हा ! आज मेरी ही चूक से यह अनर्थ हो गया, यदि मैं राजा का अभ्यागत करता तो यह निष्प्रयोजन का कुकर्म क्यों उपस्थित होता, परन्तु—“ईश्वरेच्छा वलीयसी” जो भगवान की इच्छा होती है वही होता है । ( कुमुर्क आकर दण्डवत करता है )

कुमुर्क—गुरुजी, दण्डवत ! कहिए क्या आज्ञा है ?

भिंडी—कुमुर्क—मेरे अज्ञान बालक ने क्रोधवश होकर राजा परीक्षित को यह श्राप दिया है कि उनको तत्क्ष आज के सातवें दिन में डसेगा । इस हेतु, तुम राजा परीक्षित को जाकर यह समाचार सुनाओ और हमारा आशीर्वाद कह के उससे मोक्ष लाभ करने का प्रयत्न बताओ ।

कुमुर्क—जो आज्ञा ! ( चले जाना )

भिंडी—प्रभो ! राजा परीक्षित की आत्मा को शान्ति मिले, ऐसी भावना उनके दिल में उत्पन्न कीजिये । उनके अन्तःकरण को अपने पास सहलता पूर्वक पहुँचने का शीघ्र प्रयत्न बता दीजिये ।

( जाना )





राजा परीक्षित का राज महल ।

( शोक ग्रसित राजा परीक्षित का लेटे रहना, मंत्री इत्यादि पास बैठे हैं  
गायकायें गा रही हैं । )

गायकायें—

गाना ।

तू लग जा कलेजे नाल यार मैं मरदी जानियाँ ॥ तू०—

बिछुआ बणके डँगवे चलायो यी ।

बेदरदा तैनू तरसू न आयोयी ॥

करके प्रीता कचिया बे, मैं मरदी जानियाँ ॥ तू०—

डोली पाके लै चल खेड़े, मुड कदीम दे दुश्मण मेरे ।

डरदी बोल ना सकियाँ बे, मैं मरदी जानियाँ ॥ तू०—

परीक्षित—बस ! बस ! इस संगीत को यहीं बन्द करो,  
यह संसार की सबसे मनोहर बाणी मेरे हृदय में जड़हरीली  
नागिन की तरह चोट मार रही है । यह सुरीली तान इस  
समय मेरी आत्मा को पापी कहकर पुकार रही हैं ।

मंत्री—नरनाथ ! ऐसा कौनसा रोग आपको लग गया  
जिसके कारण आप इतने विचलित हैं ? कौनसी ऐसी व्यथा  
सता रही है, जिसके प्रभाव से आप इतने चिन्तित हैं ।

परीक्षित—कौनसा रोग लग गया ? मंत्री ! यह वह रोग है,  
जिसकी दवा संसार के किसी वैद्य के पास नहीं है । यह वह

दुःख है, जिसकी शान्ति का उपाय धनवन्तरी के पास नहीं। ज्वर, विशूचिका, महायक्ष्मा, जो मनुष्यों के स्वास्थ्य के किले को धीरे २ नष्ट कर देती हैं, फिर भी वह इस रोग से अच्छे हैं। इस रोग की दवा किसी आयुर्वेद में नहीं। इसका नाम तक किसी आयुर्वेदिक शास्त्र में नहीं। यह धीरे २ जीवन की नौका को चाटती रहती है, मनुष्य के हृदय को चिता चिता कर काटती रहती है।

मंत्री—मरपाल ! भला ऐसा यह कौन रोग है ?

परीक्षित—यह रोग आत्म ग्लानिः—

नहीं है चैन उसको जो कि इसका दास बन बैठा।

नहीं है शान्ति उसको जो कि ग्रास इसका बन बैठा ॥

जमा लेती क्षणिक में है प्रभा अपनी शिकारों पर।

खा जाती हृदय को चाट कर जब ग्रास बन बैठा ॥

वही है दृश्य आँखों में वही परिणाम पापों का।

दिखा सुख का है मन में वही अंजाम पापों का ॥

मंत्री—मुकुट शिरोमणि ! भला ऐसा कौनसा पाप श्रीमान् के हाथों से हो गया है, जिससे इस शरीर का सुख, आत्मा की शान्ति, हृदय का वैभव, सब एक साथ खो गया ?

परीक्षित । वह पाप, जिसका इस जगत में प्रायश्चित्त नहीं, वह भयानक दुष्कर्म, जिसका उपाय यथोचित नहीं। (थोड़ा देर सोच कर) हाय ! मैंने क्या किया, ईश्वर समान ऋषि के गले में मरा हुआ सांप डाल दिया, कपटी कलियुग के प्रभाव से एक बिषैले पाप को आत्मा के सन्दिर में पाल लिया ( सिर पर हाथ मार कर ) हाय रे अज्ञान मनुष्य ! तू हंसता हुआ जय डंका बजा कर अपने सत्यानाश की ओर दौड़ा जा रहा है, फिर भी चेतता नहीं ! तू मृत्यु के साथ और भी मित्रता स्थापित करके

उसके निकट पहुँचता जा रहा है; फिर भी विचारता नहीं ? अपना सर्वनाश सामने देखकर, अपना पतन ज्वार भाटे की तरह सामने उभड़ता देखकर, अपने विनाश की लहरों को आवाज़ सुनकर फिर भी कुछ सोचता नहीं ?

हटा अब मन को इस माया के सब जंजाल पाषों से ।  
छुड़ा अपने को अब भारी बिपैले काल सांपों से ॥  
लगा उस ओर चित्त अपना कि बस उद्धार हो जाये ।  
बहा जाता है जो मँझधार में सो पार हो जाये ॥

( चोबदार आता है )

चोबदार—नरनाथ ! एक ऋषि आप से मिलना चाहते हैं ।  
परीक्षित—उन्हें सन्मानपूर्वक ले आओ । कहीं ये वही ऋषि तो नहीं है । हाय ! मैं उन्हें किस प्रकारसे मुख दिखाऊँ ।

( चोबदार जाता है )

( कुरुमुख का आना )

परीक्षित—ऋषिराज ! दण्डवत ! विराजिये ।

कुरुमुख—( बैठकर ) आयुष्मान् हो राजन् ।

परीक्षित—( स्वगत ) यह वह ऋषि तो नहीं हैं । ( प्रगट )

महान् ऋषि आपका आगमन कहाँ से हुआ ?

कुरुमुख—राजन् ! मैं ऋषीश्वर भिन्डी ऋषि के यहाँ से आया हूँ । उन्होंने आपको आशीर्वाद कहकर दुःख से यह समाचार कहने को भेजा है, कि अज्ञान वश उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि ने आपको ७ दिन के अन्दर तबक सर्प डसने का आप दिया है । क्योंकि आप ने न मालूम किस कारण भिन्डी ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया था । इस हेतु आप यह समाचार जान जायें और इस अकाल मृत्यु के पहले अपने को मोक्ष के योग्य बनायें ।

परीक्षित—उपकार, अनन्त उपकार इस समाचार ने मेरे आत्मग्लानि को कुछ हल्का कर दिया । इस आप ने मेरे किये हुये पापों का यथोचित बदला दिया । मूढ़ ! अब भी जा, अपने को इन संसारी पापों के फन्दों से बचा कर अब भी भागः—

बहुत है दूर जाना तुझको अब भी ध्यान में ले आ ।

है ठोकर खूब खाई मूर्ख अब भी तो सम्हल के जा ॥

भयंकर नद हैं तेरे मार्ग में नाविक नहीं कोई ।

तुझे जाना है गर उस पार कोई हूँढ़ के ले आ ॥

कुरुमुख—राजन् ! अब मुझे आज्ञा दीजिये ।

परीक्षित—जैसी इच्छा ऋषिराज ! श्री भिन्डी ऋषिजी से मेरा दण्डवत कहियेगा । मैंने जैसा भयंकर कर्म किया है उसका दण्ड यह आप शतांश रूप में भी नहीं है ।

( कुरुमुख का जाना )

परीक्षित—मंत्री जी ! अब मेरा बोझ हल्का हो गया । अब मेरे हृदय के भीतर जो ज्वार उमड़ रहा था, वह थोड़ा २ ठंढा हो गया ।

मंत्री—ईश्वर आपका अनन्त उपकार करें ।

परीक्षित—राज्य के गर्व, राज्य के सुख, राज्य के वैभव तुम्हें मेरा अन्तिम नमस्कार ।

मंत्री—यह क्यों ?

परीक्षित—वह यों कि अब इस शरीर को दूसरे रास्ते में लगाऊँगा, अकालमृत्यु के पहले इसे मोक्ष का पात्र बनाऊँगा ।

मंत्री—नरनाथ ! इस सुख, इस साम्राज्य को त्याग कर ?

परीक्षित—असली साम्राज्य, अतुल गौरव वहाँ है यहाँ नहीं । असली प्रेम, असली आनन्द हृदय के भीतर है बाहर

नहीं । झूठी दौलत के लिये पागल योंहीं हाथ २ किया करता है, क्षणिक आनन्द के लिये एक से एक दुष्कर्म किया करता है । वह यह नहीं देखता, कि उसके हृदय कोष में बहुत सी अतुल सम्पतियाँ अत्यन्त अमोल प्रेम अनादर से ठोकरें खा रहे हैं । यदि बाहर क्षणिक सुख का सोता बह रहा है, तो भीतर चिरस्थाई आनन्द की गंगा लहलहा रही है । उसे पार करके अनन्त प्रेम में पहुँचना बहुत सहल है फिर भी मनुष्य नेत्र पाकर अन्धों की तरह, बुद्धिमान होकर भी पागलों की तरह संसार में टटोलते फिरते हैं और उन्माद में निष्प्रयोजन, हिंसा, ईर्ष्या, कामना से अपने पाप के भंडार को भरते रहते हैं । बस हो चुका:—

बहुत दिन तक पड़ा था अन्ध बनके जगके फन्दे में ।  
बहुत दिन फँस रहा था निष्प्रयोजन व्यर्थ धंधे में ॥  
हुये बेतार हैं जो तार, आत्मा तन्त्र के सारे ।  
सुधार उनको कि वह आनन्द निर्मल राग गुंजारे ॥

( जाना )





### भोला नाथ का घर ।

( भोलानाथ भूख में छटपटाता आता है )

भोला—मेरे भगवान् ! ब्राह्मण की संतान और आज पाँच दिवसों से भोजन की परोसी हुई थाली की जगह, निर्जल निराकार व्रत का स्मशान और फिर भी किसके कारण ? एक डाईन के कारण जो मेरे सामने दुःख प्रगट करती है और पीछे स्वयं षटरस भोजन बनाकर अपना पेट भरती है। पेट में भूख के मारे कुड़कु उठ रही है, व्यास के मारे गला सूखा जा रहा है; मगर अन्न से पूर्ण घर से एक दाना भी नहीं खा सकता। खाया और टें हो गया। कालीशंकर ने मुझे सावधान करके मेरा उपकार किया है। मुझे मृत्यु मुख में जाने से बचा लिया है। परन्तु अब देखता हूँ तो निराहार रह कर ही प्राण त्यागन करना पड़ेगा।

अजब चक्र में पड़के आज घनचक्र हुआ हूँ मैं।

स्वयं यमराज से लड़ने को जो टकर बना हूँ मैं ॥

जमाना छानता है रोज बिजया मौज से हरदम।

मगर भोजन को जहरीला स्वयं शकर बना हूँ मैं ॥

मेरे कर्तार ! जिस तरह से पाँचों को किनारे लगा आया; उसी तरह इसको भी शीघ्र तेरे दर्बार में पहुँचाऊँ तो कहीं जान बचेगी। नहीं तो यह पाचों का बदला मुझ से अवश्य लेगी।

( कालीशंकर का आना )

काली०—कहो मित्र कैसे हो ?

भोला—भाई अच्छे हैं ।

( स्वर ) दुःख देने के लिये पत्थर का रोड़ा आ गया ।

फिर सताने के लिये ये पाप फोड़ा आ गया ॥

भूख ने तो मार के डंडों से तोड़ी पीठ तक ।

और ललियाने को ये निर्लज्ज कोड़ा आ गया ॥

काली०—कुछ उदास दिखलाई पड़ते हो—चेहरे से हवाइयाँ उड़ रही हैं ।

( स्वर ) भयानक रूप है चेहरे की रँगत टिमटिमाती है ।

कोई ये पाप कर बैठा यही सूरत दिखाती है ॥

नहीं है बुद्धिमानी पापियों के दिग खड़ा रहना ।

भयंकर पाप ये भी है यही शिखा सिखाती है ॥

अच्छा भाई राम राम फिर आऊँगा फिर मिलूँगा जैगोपाल जैगोपाल ।

( चबड़ाया हुआ जाता है )

भोला—लीजिये क्या आया और क्या बड़बड़ा कर चला गया । अवश्य कुछ दाल में काला है । इसने भी कोई न कोई प्रयत्न मेरे प्राण हरने का निकाला है ।

हायरे भूख क्या करूँ ?—

हे क्षुधा प्यारी क्षुधा दमले जरा धीरज से काम ।

अन्यथा बकरा ये तेरा है चला यमराज भाम ॥

हाय ऐसी प्यास हाय भूख हाय कुड़बुड़ी ।

तू भी मुझको कष्ट देने को पताका ले उड़ी ॥

( एक यजमान का भोजन की सामग्री लेकर आना )

यजमान—पंडित जी पालागी ! आज पिता का आरु था इसलिये यह भोजन दादा ने भेजा है ।

भोला—क्या कहा, तेरे पिता के श्राद्ध का भोजन तेरे दादा ने भेजा है ? चाण्डाल ! तेरा दादा ऐसा पापी कि उसके सामने तेरा पिता यानी तेरे दादा का पुत्र मर गया ? ले जाओ, मैं ऐसे पापी के हाथों से भोजन नहीं कर सकता । क्योंकि पापी का भोजन करना स्वयं अपने को पापी बनाना है--

**गंदगी नाली की करती स्वच्छ जल मटिया को नाश ।**

ढाक देती धूल है शशिधर का चमकीला प्रकाश ॥

ले जावो, इस भोजन को मेरे सामने से ले जावो। (पेट पकड़ कर) हाय भूख !

यजमान--परन्तु पंडितजी ! मैं दादा तो अपने बड़े भाई को कहता हूँ ।

भोला—क्या कहा, बड़े भाई को दादा कहता है ? तब तो उपकार, यजमान उपकार ! मगर सुनो तो, कहीं यह भोजन इस घर में किसी और को तो नहीं दिखलाया है ?

यजमान—और किसको दिखलाऊंगा। पड़िताईनजी तो घर के अन्दर हैं।

भोला—अरे वह घर के अन्दर ही अन्दर पाँच को सीधे पहुँचा चुकी हूँ।

## यजमान—इसके माने ?

भोला—इसके माने तू मूर्ख क्या जाने। अच्छा, भोजन की थाली ला, लोटे से हाथ धुला और मुझको धीरे से खिला कर भाग जा।

**यजमान—जो आशा ।**

( यजमान भोलानाथ का हाथ धुलाकर आसन दिखाकर थाली आगे रखता है । भोलानाथ पहिला घास भोग लगाकर जैसे ही मुख में डालता है, वैसे ही चन्द्रकला आती है )



भोला—या अन्नपूर्णे.....

चन्द्र—क्यों तीन दिन से उपवास कर रहे हो, घर का भोजन नहीं खाया जाता ? अब बाहर से मंगा कर खा रहे हो ? तुम निर्बल हो गये हो, मैं तुम्हें यह भोजन नहीं करने दूँगी। अरुई की तरकारी, दही का बड़ा और पेसी मोटी २ पूरियें तुम्हें कष्ट पहुँचायेगी। चलो भीतर चलो, मैं तुम्हें भोजन बना कर खिलाती हूँ।

( भोलानाथ थाली उठाकर पटक देता है और लड़ा हो जाता है )

भोला—बस खा चुका। डाईन चाण्डालिन ले मैं चला जाता हूँ। हाय भूख ! ( कहता हुआ भाग जाता है )

यजमान—पडिताईन जी ! महाराज जी को क्या हो गया है, क्या कुछ विक्षिप्त तो नहीं हो गये हैं ?

चन्द्र०—क्या कहूँ भाई, संसार में सब ही दवाई है, परन्तु शंसय की औषधि स्वयं भगवान् ने भी नहीं बनाई है। न जाने ४ दिवस से उनके ध्यान में क्या समाया है, कि न मुझको एक अन्न से वास्ता है और न स्वयं खाया है।

यजमान - चलो माता, उन्हें बाहर से बुला लायें।

चन्द्र०—चलो भाई, अगर हों तो समझा बुझा के मना लायें। उन्हें क्या धुन सवार है, यह जान कर उनका शंसय मिटायें।

( दोनों का जाना )





### परीक्षित का महल ।

( परीक्षित की रानी अपनी सखियों के साथ बैठी हुई बीणा बजा कर गा रही है )

रानी—

गाना ।

भरी गगरी मोरी ढरकाई छैल ।

तुम राखत हो हिरदय में मैल ॥ भरी०—

पइयाँ पड़त हूँ बिमती करत हूँ—

मानत नाहीँ श्याम आयो गैल गैल—भरी०—

१ सहेली—महारानीजी ! आप जिस समय हाथ में बीणा लेकर कोमल कंठ द्वारा संगीत का व्यौहार करती हैं, उस समय ऐसा ज्ञात होता है, मानो स्वर्ग की महान शक्ति अपने बरदान की प्रतिमा तापसी हृदय पर अमृतमयी शीतल जल की बौछार करती हैं ।

महारानी—प्यारी सखी ! मेरा यह सौन्दर्य, मेरी यह प्रसन्नता, मेरी इस समय की संगीत, केवल प्राणनाथ के शुभ कामना के लिये ही बनाई गई है । जिनके जीवन के नौका में लिपटी हुई थोड़ी रज, मानो गंगा को पार करते हैं इस हेतु मेरा जो कुछ है, वह सब उन्हीं एकाराध्य देवता मेरे इष्टदेव श्री महाराज के चरणों के रज का एक मात्र कारण है । जिस प्रकार पृथ्वी अपनी समस्त अभिलाषाओं के साथ सूर्य के

चारों तरफ चक्कर लगाती है, उसी प्रकार यह दासी भी जो कुछ करती है, अपनी स्वामी की मनोकामना के लिये करती जाती है ।

सखी—महारानी ! आपका कहना यथार्थ है । फिर भी आप में जो अद्वितीय कला है, वह भगवान् की दी हुई एक विचित्र पदार्थ है ।

म० रानी—स्वामी नाथ के आने का समय हो गया । इस हेतु अब जल्दी से आज का अभ्यास पूरा करूँ ।

गाना ।

ध पध म प गम गम नि ध रे गम प रे सा ।

रे सा नि ध नि सा ग म ध नि सा ।

ग ग रे सा नि ध प म ग म नि ध पम ग रे सा ॥ ध प ध०—

सा ग म ध ध नि सा रे सा नि ध नि सा ।

ग ग रे सा नि सा गम पग मग रेसा ॥ नि ध०—

निरे निध निध पम गम निध निध गम ग रे सा ॥ ध प०—

( राजा वरीक्षित आते हैं )

परी०—अहा ! ये स्वर्ग की अप्सरायें हैं, या आकाश की परियां ! देवों के देवाङ्गना हैं अथवा इन्द्र की इन्द्रानो ! हाथ में बीणा लिये, मोतियों की मालायें पहनें ? बिखरी हुई अलकों को लज्जा पूर्ण समेटे पेसो ज्ञात होती है मानो मानसरोवर में हंस किल्लोल करते हुये सर्प से आलिङ्गन कर रहे हैं । मगर हैं आज इस त्यागी को क्या संसार की ये रसनायें अपनी तरफ खींच लेंगी ? सम्हल, परीक्षित सम्हल !

ये मूर्ख मृत्यु खाड़ी है सर पर वो मार्ग तेरा महा अगम है ।

भटक रहा है यहीं पै गाफिल नहीं भरोसा कहाँ लो दम है ॥

न साथ ले ये अधम की तृष्णा नहीं भटकता फिरेगा आखिर ।

ये सब फँसाने के तेरे पुर्जे हैं कोई ज्यादा तो कोई कम है ॥  
परीक्षा तेरी है आज गाफिल ज़रा भी चूका तो जा गिरेगा ।  
अगर लगाई तनिक सी लौ भी तो जान बे मौत ही मरेगा ॥

महारानी—कौन प्राणनाथ ! हैं, आज आप इतने उदास क्यों दिखाई पड़ते हैं ? चेहरा कुम्हलाया हुआ है, समस्त शरीर पर दुःख का बादल छाया हुआ है ?

परीक्षित—प्रिये ! सुख दुःख चिन्ता प्रसन्नता, यह सब संसार में मनुष्य से लिपटी हुई वो ज़हरीली नागिनी हैं, जिनके वश में होकर मनुष्य अपने असली सुख से बंचित रहता है; और निष्प्रयोजन इस न ठहरने वाले चीजों का । धूप छाँह की तरह बदलने वाली इच्छाओं को साथ लिये हुये सदा रोता है:—

आदर्श नष्ट करना है कार इसका हर दम ।  
पंगुल बना के रखना है धर्म इसका पुरगम ॥  
जब तक न त्याग होगा व्याधा सदा रहेंगी ।  
संसार सह रहा है इच्छा मेरी सहेंगी ॥

महारानी—हृदयेश ! मनुष्य भगवान् का भेजा हुआ एक दूत है । जिसको जगत में आकर अपने कर्तव्य की परीक्षा देनी पड़ती है । जो इसमें उत्तीर्ण हो जाते हैं, जो माया के फन्दे में न फँसकर अपने को कर्मयोगी ठहराते हैं, कमल की की भाँति जल में रह कर जल की हरेक बूँद से बच जाते हैं; वही आदर्श पुरुष कहलाते हैं ।

पाँचों विकार मन में सब के समा रहे हैं ।  
है जाल प्रेम कंटक मय ये दिखा रहे हैं ॥  
जो इनसे बच गये हैं वो ही पुरुष हैं सच्चे ।  
मन लीन कर फँसे हैं वे धर्म से हैं कच्चे ॥

परीक्षित--हृदयेश्वरी ! तुम्हारा कहना यथार्थ है । संसार महान् ज्ञानी, महान् योधा, महान् ऋषियों को फँसाने के लिये वेश्याओं के समान वृणित पदार्थ हैं । मेनका ने विश्वामित्र को, रम्भा ने उपलब्ध को और मत्स्यगन्धा ने हमारे वंशज आदर्श पुरुष शान्तनु महाराज को जब अपने कुटिल नेत्र कटाक्षों से वेधित कर दिया, महान् योगी से भोगी बना दिया, कर्तव्य परायण को उनके कर्तव्य से गिरा दिया, उनको अधोगति में पहुँचा दिया तो मेरी विसात ही क्या है ? उन, चमकते हुये सूर्यों के आगे इस टिमटिमाते हुये दीपक की बात ही क्या है ।

महारानी—प्राणनाथ ! आपके इन सब बातों के कहने का तात्पर्य ?

परीक्षित—तात्पर्य ! हाय, तुमसे क्या बताऊँ, सुनते ही यह मुख कमल कुम्हला जायगा । मैंने अज्ञान वश कामान्ध हो एक ऐसा भयानक कर्म कर डाला है जिसके श्रवण करते ही तुम्हारा ये चन्द्रमा के समान प्रफुल्लित, इन्द्र धनुष के समान मनोहर और गंगा के समान पवित्र मुख मुर्का जायगा ।

महारानी—महाराज ! और अधिक बातें न बढ़ाइये । भला आप सँ ऐसा क्या दुष्कर्म हुआ है जिसके लिये आप इतने विचलित हैं कृपया यह सुनाइये ।

परी०—दुष्कर्म, भयानक, पाप जिसका प्रायश्चित्त नहीं ।

महारानी—पाप ! धर्म का स्तम्भ हिल गया, सूर्य ने अपनी रोशनी बन्द कर दी, चन्द्रमा ने अपनी शीतलता छोड़ दी, पुष्प ने अपनी सुगन्धि खो दी, हिमांचल आज वनस्पति हीन हो रहा है, भारत का एक बीर पुरुष, धर्मराज युधिष्ठिर, महारथी बीर अर्जुन, कर्तव्यपरायण पूजनीय अभिमन्यु का



वंशज आज एक भयानक पाप कर्म करने के अपराध में दुखी हो ! आश्चर्य ! विचित्र समाचार ! नक्षत्र हिल गये, प्रकृति ने अपना नियम तोड़ डाला, यह सुनकर इतना भी मैं विचलित न होती जितना आज आपके मुख से ऐसे हृदय विदारक वाक्य सुनकर घबड़ा रही हूँ । सुनाइये मेरे हृदयेश, मेरे जीवन सर्वस्व आप मुझे अधिक और न दुःखित न बनाइये आप से और पाप हो जाये यह असम्भव है ।

परी०—प्रिये प्रकृति असम्भव हो को सम्भव बनाती है । जल जो अमृत के समान है वही कभी गरल के रूप में हो जाता है दशरथ क्या ज्ञानी न थे जिन्होंने समय के फेर से अपने हृदय रत्न रामचन्द्र को चौदह वर्ष के लिये बनवास भेज दिया । आदर्श पुरुषोत्तम रघुवंश शिरोमणि श्रीरघुनाथ क्या बुद्धिमान् न थे जिन्होंने अपनी प्राणों से प्रिय अर्धाङ्गिनी को वन में भेज दिया । उस हृदय के टुकड़े को जिसके लिये वह रावण ऐसे वीर योधा का नाश कर एक ब्रह्महत्या के अधिकारी हुये; उसी को एक तनिक सी बात के लिये दिल से निकाल कर फेंक दिया । जो संसार में आता है चाहे वह ज्ञानी हो, महापुरुष हो, योगी हो, वह इस काल चक्र के थपेड़े में आकर अपनी कक्षा से बदल जाता है:—

योगी जंगम सिद्ध बने कितने, कितने जन माथ मुड़ाये ।  
 कितने कर उपवास उदासी, संन्यासी बन घास बलाये ॥  
 ध्याये तीरथ को कितने, मन साधि समाधि अनेक लगाये ।  
 कर धर के सब हार गये, पर जग माया से पार न पाये ॥  
 ब्रह्मा शेष महेश लुके तब औरन की क्या गति है न्यारी ।  
 जल के भीतर कौन भिगे नहि कौन बचै कर दुनिवादारी ॥

पाप हुआ संताप हुआ परिणाम अधीर हृदय कलपावे ।

कर्म नगाड़ा बाज रहा अब मृत्यु मिले जियरा कलपावे ॥

महारानी—जीवन सर्वस्व आपका कहना यथार्थ है । सूर्य जब उदय होता है अस्ताचल को अवश्य जाता है । जो संसार में जन्म लेता है वह सांसारिक नियमों के अनुसार उसके उतार चढ़ाव के लहरों में आकर अवश्य थपेड़े खाता है । पर जिस प्रकार एक भयकर तूफान, वर्गद के वृक्ष को नहीं हिला सकता उसी प्रकार जो कर्तव्यपरायण हैं उनको संसार क्या भगवान की कोई भी शक्ति उनके धर्म से नहीं डिगा सकती । उसी प्रकार हरिश्चन्द्र का दृष्टान्त लीजिये । राज चला गया, स्त्री पुत्र बिक गये एक महानीच डोम के दास होकर अपने धर्म पर दृढ़ रहे अन्त में प्रकृति को हार खानी पड़ी इन्द्र ऐसे सुरराज को भी लज्जित होना पड़ा ।

परी०—धन्य हौ प्रिये तुम धन्य हौ । आज तुम्हारे मुख से ऐसे उत्साह पूर्ण वाक्य सुनकर मेरा पापात्मा मानों पवित्र होती जा रही है कर्तव्यपरायण ! अहा, कैसा उत्साह वर्द्धक शब्द है जो मुर्दे को जिलाता है । एक क्षत्राणी के मुख से निकली हुई । एक अधोगति में पहुँचे हुये क्षत्री को मानो नर्क से निकाल कर स्वर्ग में पहुँचाता है । सुनो, कान देकर सुनो हृदय को दृढ़ बना कर सुनो, कहीं ऐसा न हो कि मेरे ज़हरोले पाप सुनकर तुम्हारा धर्म खम्भ डगमगा जाय ।

महारानी—स्वामी ! सुनाइये आप की यह दासी अपने को उन सौभाग्यवती भारत रमणियों की रज समझती है जिन्होंने सत्यवान् नल इत्यादि की सेवा में अपने को भिटा डाला था । मैं आप की अर्धाङ्गिनी हूँ । आप मेरे इष्टदेव हैं । मैं आप की हृदय में इच्छा और मनोकामना के पुष्प तथा



प्रेम के जलसे अर्घ्य देनेवाली पुजारिन हूँ। आप की बात सुनने के लिये यह दासी उसी भाव से जो भाव आज तक था उसी प्रेम के कोष को लेकर जो आप की सेवा के निमित्त बना है तैयार है।

परी०—तो सुनो मैं आखेट में गया स्वजनों के छुट जाने से और प्यास से पीड़ित होकर भिन्डी ऋषि के आश्रम में पहुँचा। ऋषि समाधिस्थ थे मैंने जल की प्रार्थना की। कुछ उत्तर न मिलने पर कलियुग के प्रभाव से राजदम्भ की विषैली मदिरा प्रयोग से ऋषि को दण्ड देने के अभिप्राय से उनके गले में पास ही मैं पड़ा हुआ मरा सर्प डाल दिया। वहाँ से आते ही अपनी मूर्खता पर विचलित हो रहा था कि ऋषीश्वर का भेजा हुआ चेला आया उसने आकर मुझे यह समाचार सुनाया।

महारानी—क्या ?

परी०—यह कि उनके पुत्र शृङ्गो ऋषि ने अपने पिता का ऐसा घृणित अपमान देखकर मुझको यह श्राप दिया ....

महारानी—क्या कहा ? श्राप दिया !

परी०—हाँ, देखो विचलित न होना जिस आदर्श नारियों की उपमा देकर तुम अपने को भारत रमणी के नाम से सम्बोधन कर चुकी हो उसे कलंकित न बनाना। उन्होंने मुझे श्राप दिया कि तत्काल सर्प मुझे सात दिन के अन्दर डसेगा।

महारानी—क्या कहा तत्काल सर्प आपको डसेगा, आप की अकाल मृत्यु होगी। आप स्वर्ग से वंचित रहेंगे। क्या यह श्राप एक ऋषि के मुख से निकला हुआ श्राप है क्या यह दण्ड एक आदर्श पुरुष के लिये यथोचित है ? नहीं, नहीं, स्वामीनाथ यह असम्भव है आप के सुनने में भ्रम हुआ है।

परी०--नहीं प्रिये ! यह अक्षर २ सही है ।

महारानी--अक्षर २ सही है ! प्राणनाथ, मेरे जीवनसर्वस्व को तत्काल सात दिन में डसेगा, मैं सुन रही हूँ । इसका परिणाम विचारती हूँ, फिर भी मौन हूँ, कुछ नहीं कर सकती । आज योग और शक्ति में लड़ाई होगी, प्रकृति या तो अपने नियम भंग करेगी या एक क्षत्राणी की जगहँसाई होगी । सर्प डसेगा एक सती के पति को अकाल मृत्यु अपनी लपेट में सुलायेगी, यह अनर्थ नहीं हो सकता । सर्प क्या स्वयं भगवान भी यह अनिष्ट नहीं कर सकते । शृङ्गी ऋषि ब्राह्मण हैं । अगर अवसर आयेगा तो मैं उन्हें भी अपने तेज बल से जरा डोलूँगी, तो फिर तत्काल क्या है ? आये मेरे प्राणनाथ को डसने के लिये, आये, मैं भी देखूँगी—

है ऋषि का आप उस लेने को काला नाग है ।

ज्ञात होगा अब सती का क्रोध कैसी आग है ॥

फूंक डालूँगी उसे जो सामने आ जायगा ।

है यही सर्वस्व जीवन प्राण इनका भाग है ॥

न घबड़ाइये स्वामी नाथ न घबड़ाइये, आने दीजिये तत्काल को आने दीजिये, खो मैं कौन सी शक्ति है, ऋषि का आप अधिक है या सती का क्रोध अधिक है, यह उस जहरोले कीड़े को आजमाने दीजिये । यमराज हार खा गये । ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने शिर झुका लिया । अन्त में बालक रूप होकर पालने में खेलने लगे । उसके आगे उसी धर्म को पालन करनेवाली के आगे एक छोटा सा कीड़ा, एक क्रोधवन्त ब्राह्मण, उसके जीवन-सर्वस्व को बिलगाना चाहते हैं । आये देखें ।

कौन शक्ति किस कदर बल है अभय के बान में ।

खूब अब मालूम होगा तत्त्व इस मैदान में ॥

( बहसा तत्क्षणावली लेती है )

परी०—अहा ! आज दुर्गा मानो महिषासुर के बध के लिये तत्पर है । महाकाल रात्रि आज ही उपस्थित है । देवी, मैं तुम्हारा पति होने लायक नहीं हूँ । तुम शक्ति हो, मैं उसका उपासक हूँ । तुमसे यही बरदान मांगता हूँ, कि धर्म परायण रहने की जो शिक्षा तुम मुझको दे रही थी वसी का तुम भी अवलम्बन करो । प्रकृति के नियम को न तोड़ो । जो होना था हो गया, अब इस प्रकार के क्रोध से मुख मोड़ो ।

( रानी अपने होश में आ जाती है और परीक्षित को शीश झुकाये देखकर लज्जित हो जाती है )

महारानी—प्राणनाथ ! ये क्या कर रहे हैं ? मुझे क्षमा कीजिये । मैं न सहने वाले दुःख को सुनकर पागल हो गई थी, हृदय बिदीर्ण करने वाले समाचार को श्रवण कर अपने आपसे बाहर हो गई थी । आपने ठोक कहा । कर्तव्यपरायण ( घामने उत्तरा अभिमन्यु को रण में भेज रही है, ऐसा दृश्य नज़र आता है । ) वह देखिये, वह देखिये, आपके पिता को आपकी पूजनीया माता कर्तव्य-पालनार्थ मृत्यु को आलिङ्गन करने के लिये सजा रही हैं । ( सहसा दृश्य बदल कर सुभद्रा अभिमन्यु को रण में जाने को तलवार दे रही हैं, ऐसा नज़र आता है ) उधर देखिये, उधर देखिये आप के पूजनीय पिता को उनकी माता रण में जाने के लिये अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित कर रही हैं । धन्यवाद ! देवियो धन्यवाद ! मैं भी तुम्हारा अनुकरण करूँगी, स्वामी को कर्तव्यपरायण बताऊँगी । इसमें चाहे कुछ भी हो; परन्तु धर्म से विमुख न होऊँगी । ब्राह्मण वाक्य का सम्मान करना हमारा धर्म है । प्राणनाथ, इस अकाल मृत्यु से छटकारा पाने का क्या आपने कोई उपाय भी सोचा है ?

परी०—हाँ प्रिये ! ब्राह्मण-मंडल और महर्षि श्री

शुकदेवजी ने मुझे एक उपदेश दिया है, कि मैं समस्त वैभव सुख त्याग कर, हरद्वार के तट पर जाकर श्रीमद्भागवत का श्रवण करूँ । इससे अवश्य मोक्ष प्राप्त होगा ।

महारानी—तो जाइये नाथ, जाइये । दासी की अभिलाषा, मेरे शिर के ताज, मेरे जीवन के शृङ्गार सुख से जाइये । पत्नी पुत्र के मोह में फँस कर अपने मन को बिचलित न बनाइये । जिस समय आप बिभव दुन्दुभी बजाते हुए मोक्ष पद को प्राप्त होंगे । दासी भी चरणों में सेवा करने के लिये उपस्थित हो जायगी । आप आगे २ चलिये, मैं आपका अनुसरण करती हुई पीछे २ आती हूँ । कलेजे पर पत्थर रख लूंगी, आँखें अगर रोयेंगी, इनको फोड़ डालूंगी । जिह्वा चिल्लायेगी तो इसको काट डालूंगी । मगर आप को कर्त्तव्य से बिमुख न होने दूंगी ।

परी०—प्रिये तुम रोती हो ?

महारानी—नहीं प्राणधन नहीं, मेरी आत्मा शरीर से निकल कर आपकी पदसेवा को जाना चाहती है ! इसी आनन्द में उसके मार्ग को शीतल बनाने के लिये ये नेत्र मैं से निकले हुए पानी के बूद बौझार करना चाहते हैं । आइये मैं अपने हाथों से आपका कर्त्तव्य पालन करने के लिये सुसज्जित करती हूँ ।

जीवन मरण तो निश्चय हैं विश्व के बखेड़े ।

सुख दुख दिखा रहे हैं अपने नये थपेड़े ॥

पर कर्म रूप आँधी जा पार कर सकेगा ।

निश्चय वहाँ प्रभू के आदेश भर सकेगा ॥

( जन्मेजय का आना )

जन्मेजय—माता पुकारती है कर्त्तव्य पालने को ।

उपदेश है गुरु का कर्त्तव्य पालने को ॥

जग भर सिखा रहा है कर्तव्य पालने को ।  
सेवक भी आज तत्पर कर्तव्य पालने को ॥

परी०—कौन ? पुत्र जन्मेजय ?

जन्मेजय—माता पिता प्रणाम ! पिता जी ! मैंने सुना है, कि आप शृंगी ऋषि के आप से भय खाकर मोक्ष पद प्राप्त करने के लिये संसार के सुख को त्याग कर भगवद्भजन सुनने के लिये जा रहे हैं । गुहजी ने क्षात्रधर्म कर्तव्य पालन हो बताया है । श्री माता के मुख ने भी यहाँ आते ही वही अमृत वाणी सुनायी । आप दोनों अपना कर्तव्य कीजिये, मैं भी अपना कर्तव्य निभाऊँगा । पुत्र के रहते पिता पर ऐसा घोर अत्याचार हो, इसका बदला महा भयंकर रूप में प्रमाणित कर दिखाऊँगा । तत्काल को क्या मजाल जो आपका एक बाल भी बाँका कर सके । आपको बचाने के लिये एक तत्काल क्या मैं संसार के समस्त सर्पों का संहार कर दूँगा ।

परी०—पुत्र ! अगर वही उत्साह दिल में है तो निश्चय ही तुम मेरा नाम दिपाओगे; परन्तु ईश्वर और ब्राह्मण इत्यादि के कर्मों में हस्तक्षेप करने से केवल धर्म ही नहीं अपने कल्याण में भी भारी आघात पहुँचता है । इनका वाक्य कभी निष्फल नहीं हो सकता । ये कभी निष्प्रयोजन मनुष्य को कष्ट देने का प्रयत्न नहीं करते । इस हेतु अगर तुमको मेरी ममता है, मेरे वंश का नाम दिपाना है तो मेरे पश्चात् ऐसा कर्म करो जिससे संसार एक मुख से तुम्हारे बड़ाई करे ।

जन्मेजय—पिताजी ! मनुष्य पेड़ लगाता है, फल खाने के लिये, पुत्रोत्पत्ति की कामना उस जगदीश से करता है

वंश गौरव बढ़ाने के लिये, वृद्धावस्था में अपने आत्मज को सुपात्र बना कर अपनी रक्षा कराने के लिये। आप पर इस समय संकट आया है। आप अकाल मृत्यु के लिये अग्रसर हो रहे हैं। ऐसे समय में यदि कुछ काम न आऊँ तो मेरे जीवन को धिक्कार है।

परी०—मैंने जैसा किया है वैसा फल पाया है। यदि मैं अपमान द्वारा शृङ्गी ऋषि के पिता को लाञ्छित न करता तो आज यह दिन देखने में न आता। अपराध मेरा है। मैं उसका फल पाऊँगा। विष खाने से उसका परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है। मैंने राजसत्ता के नशे में अन्धा होकर जो भीषण अपराध कर डाला है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

जन्मेजय—बड़े दुःख की समस्या है, लक्ष्मी रहने पर भी कंगाल बनना पड़ा। शक्ति रहने पर भी पंगुल बनना पड़ा। उधर बदले का ध्यान, इधर पिता की आज्ञा! माता जी! आप ही बतलाइये मैं क्या करूँ?

महारानी—पुत्र क्या कहूँ—

शूरता बड़े शक्ति की एकत्र ही भंडार है।

पर पति आदेश से इसका हुआ संहार है॥

जन्मेजय—लहलहाता है जलाशय बूंद पा सकते नहीं।

कर्म गति है हम पिता के काम आ सकते नहीं॥

परी०—अगर काम आने की अभिलाषा हृदय में है तो ऐसा काम करो जिसमें मेरे बाद मेरे कुल का नाम रहे। पुत्र! संसार में सदा कोई रहने के लिये नहीं आता। एक न एक दिन सबको जाना पड़ता है। पंगुल की तरह दुःख से पीड़ित यमघातनातोड़ित और वृद्धावस्था की क्षीणता से मर्माहत

हो कर जो मनुष्य तड़प तड़प कर मरते हैं उनसे तो यही उत्तम है कि कर्त्तव्य पालन करते हुए हाथ पाँव सलामत रहते यहाँ से चल जाना चाहिये । रानी ! जिन उत्साहपूर्ण वाक्यों से अभी तुम उत्साहित हो कर मुझे विदा कर रही थीं उसी उत्साह को बिखलाओ, मुझे बिदा करो और पुत्र जन्मेजय को उपदेश देकर अपने वंश का गौरव बढ़ाओ ।

रानी—स्वामी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । पुत्र जन्मेजय ! पिता के आज्ञानुसार कार्य करने में ही अपना सौभाग्य समझो, मेरी तरफ देखो, जिस सूर्य के बिना मेरा संसार अन्धेरा हो जायगा, जिस जल के बिना यह मछली तड़प २ कर मर जायगी, उन्हीं को यह कर्त्तव्य पालन करने के लिये आज प्रसन्नता पूर्वक बिदा कर रही है । क्या मुझे दुःख नहीं है ? क्या मेरे हृदय में वेदना नहीं है ? है; परन्तु क्या करूँ, हम स्त्री जाति का जन्म इसी लिये हुआ है, कि वह हजारों यातनायें सहने पर भी मुँह से उफ तक न निकालें । हैं ? यह क्या बकने लगी ? पुत्र ! हृदय में धैर्य धारण करो । ( जन्मेजय शीश झुका लेता है ) जाइये, प्राणनाथ जाइये, संसार की ममता, पुत्र का स्नेह, स्त्री की सेवा इन सब का ध्यान छोड़ कर अब केवल एकमात्र उस जगत् पिता के चरणों में ध्यान लगाइये । वही सबका बेड़ा पार करता है । अपना भी बेड़ा पार करेगा:—

मेरे हतभाग्य ने मुझको खरल करने की ठानी है ।  
मगर भूला है वो, ये एक क्षत्राणी की बानी है ॥  
पड़े लाखों विपत, हिरदय को टुकड़े करके तोड़ूंगी ।  
जगत् में छोड़ दूंगी, धर्म का पल्ला न छोड़ूंगी ॥

परो०—प्रियतमे ! विद। पुत्र ! सब जाय मगर इतना ध्यान रखना कि धर्म न जाय । इसकी मर्यादा की रक्षा करने में:-

**पुत्र पुत्री मान धन सब कुछ लगाना चाहिये ।**

प्राण देकर धर्म को अपने बचाना चाहिये ॥

( जाना चाहता है रानी हाथ पकड़ती है । )

रानी—जीवनधन ! ( रोने लगती है । )

**परी०—सावधान !**

**परीक्षा है सफलता को यदि हृदय लगाओगी ।**

अभी नारी हो पीछे आर्यनारी भी कहाओगी ॥

( जाना )

**जन्मेजय—**( पिता पिता कहकर रोने लगता है )

रानी—गये प्राण धन गये ! मेरा संसार अँधेरा हो गया, मेरे जीवन का कल्पवृक्ष गरलमय हो गया । हैं ? मेरा शिर क्यों चकराता है, मुझे घुमटा आता है त्राहि ! त्राहि !!

( गिरकर बेहोश हो जाती है, जन्मेजय रोने लगता है । सहेलियां सब आकर विस्मित होती हैं । )

( टेबला )

॥ इति ॥



जंगल ।

( कलियुग आता है )

कलियुग—जिस प्रकार अन्धेरी रात में एक चोर अपना कार्य करने में प्रसन्न होता है या जिस प्रकार एक कामी सती के पति के मर जाने पर उसका धर्म नष्ट करने के लिये प्रफुल्लित होता है, उसी प्रकार आज परीक्षित के चले जाने से मैं आनन्दमय हो रहा हूँ । अत्याचार, व्यभिचार, खून ये सब कराना मेरे बायें हाथ का काम है । कलह, द्वेष, राग इनको बढ़ती करना मेरे राज्य का परिणाम है ।

कहीं कलह है, कहीं प्रलय है, कहीं पै आतंक छा रहा है ।  
कहीं पै भाई पिशाच बनकर, गले पर छूरो चला रहा है ॥  
है भ्रणहत्या का रस्म जारी, जूआ दगा अब बनी है प्यारी ।  
कली सुकमों की है भिखारी, ये राज्य मेरा दिखा रहा है ॥

( धर्म प्रगट होता है )

धर्म—सावधान !

यहाँ तुमसे सैकड़ों आ चुके, कदम उनके गड़ के उखड़ गये ।  
मिले मिट्टियों में वह ताज सर, कि जो पेंठ से थे अकड़ गये ॥  
ये स्वप्न हैं सब शाम्बरी, तेरी एक पल जादूगरी ।  
यहाँ लाखों बन के बिगड़ गये, यहाँ लाखों बस के उजड़ गये ॥

कलि०—आ गये मेरी धारणाओं में निष्प्रयोजन टाँग अड़ाने वाले एक अवधूत आ गये ।

धर्म—निष्प्रयोजन टाँग अड़ाना मेरा काम नहीं है कलियुग ! मैं तुम्हारे संसारी जीवों को और संसार की भलाई के लिये जो कुछ कह रहा हूँ, भला समझ कर कह रहा हूँ, आगे मानना न मानना तुम्हारा काम है ।

कलि—आप इन उपदेशों को अपने पास ही रहने दीजिये ।

मैं कोई अन्धा नहीं मूर्ख नहीं, बच्चा नहीं ।

है सुदृढ़ ये राज्यशासन दण्ड, कुछ कक्षा नहीं ॥

धर्म—तुम सुदृढ़ हो, परन्तु उस ताड़ के वृक्ष की तरह जो एक ही आंधी के थपेड़े में पृथ्वी पर गिर कर अपना मस्तक झुका लेता है । तुम बुद्धिमान हो मगर उस विद्यार्थी की तरह जो अर्थ का अनर्थ लगाता है । तुम आँख वाले हो मगर उन चिमगादड़ों की तरह जिनको दिन को दिखाई नहीं देता ।

जो स्वयं अपनी अवस्था जान कर अनजान हैं ।

दिन के हैं अन्धे मगर संसार में विद्यमान हैं ॥

कलि०—वृथा की बातें बनाकर मेरा माथा न घुमाओ तुम्हारे पथ पर चलने वालों की आज कल ऐसी हीन अवस्था है उसे जरा खुद अपनी आँखों से देखते जाओ ।

कर्म हैं सब जोर के, फिर धर्म का है नाम क्या ।

हाथ कंगन को भला, आरसी का काम क्या ॥

देखो ! वह सामने से तुम्हारे पथ पर चलने वाले आ रहे हैं । अब आँखें खोलकर उनका तमाशा देखो ? फिर तुम्हें ज्ञान होगा:—

हैं स्वयं बनते बिगड़ते या कि बहकाता हूँ मैं ।  
कौन करवट ले रहा संसार, दिखलाता हूँ मैं ॥

( बूढ़ा बाप और उसका जवान लड़का आता है )

ल०—पिताजी ! आइये मैं आपको कंधे पर बैठा लूँ यह जीर्ण अवस्था, बुढ़ापे का कष्ट, चलने से आपकी पिण्डलियाँ शिथिल हो गई होंगी, लाइये इन्हें मैं सुहला दूँ । इनकी थकान मिटा दूँ ।

पुत्र चिरंजीव रहो । अहा ! जिसे संसार में ऐसा पुत्ररत्न प्राप्त हो उसे भला कष्ट क्यों व्याप्त हो ।

( कलियुग प्रगट होता है )

कलि०—मूर्ख बालक ! किसकी सेवा करना चाहता है ? इस बुढ़े की, जो अपनी जिन्दगी कि चन्द सांसों तुझे कष्ट देने में लगा कर अपने जीवन के टिमटिमाते हुए दीपक को बुझाना चाहता है ? तेरी यह अवस्था, ऐसा सुन्दर शरीर, इस समय का प्राप्त धन, इन सब सुयोगों के रहने पर अगर किसी की सेवा करना चाहता है तो वो देखः—

( सामने परदा फटता है विलासप्रिय स्त्री-बुढ़ों का बैठे आनन्द लेना )

लड़का—यह मञ्जुष्य तो ठीक कहता है । चार दिन की जिन्दगी में अगर सब कुछ होने पर भी सुख न किया तो क्या जब इस बुढ़े की तरह टाँगें काँपने लगेंगी तब ऐश करूँगा ? ( बुढ़े को धक्का मार कर ) चल बुढ़े चल तुझे शीघ्र ठिकाने लगाऊँ ।

पि०—अरे पुत्र ! यह क्या करता है ?

पुत्र—पुत्र का पिता जल्दी मरता भी नहीं ।

ऐश का काँटा है मेरे, धर्म का शैतान है ।

शान्त शीतल कुंज में जलता हुआ मैदान है ॥

( धक्का मारता ले जाता है )

क०—देखा ?

ध०—परन्तु ।

क०—जरा धीरज धरो, एक और दृश्य दिखलाता हूँ ।

समय तुमको दिखा देगा कि किस पानी में बसते हो ।

जगत हँसता है तुमपर या स्वयं ग्लानी में हँसते हो ॥

( बुढ़ा मालिक और उसका जवान नौकर सिर पर रुपये की गठरी लिये आता है । )

मा०—( नौकर को लकड़ी से मारते हुए ) चान्डाल सेवक, जल्दी नहीं चलता, अपनी जवानी की ऎँठ दिखाता है । जानता नहीं कि यह मेरे बुढ़ापे के दिन, ये मेरी खाँसी का रोग और उसपर इतनी बड़ी मंजिल चल कर सन्ध्या के पहले घर न पहुँचा तो कहीं इसी मैदान में अकड़ कर मर जाऊँगा ।

नौ०—( मालिक का पांव पकड़ पकड़ कर ) स्वामी, आपके वृद्ध हाथों में मुझे मारने से झटका तो नहीं लगा ? क्रोधित न होइये इससे शरीर और भी कलान्त हो जायगा ।

मा०—( एक और लकड़ी मार कर ) चान्डाल ! मुझे उपदेश सुनाता है, मेरे क्रोध को और भड़काता है ।

( कलियुग प्रगट होता है )

क०—ठहरो ! तुम इस मनुष्य को क्यों मार रहे हो ?

मा०—तुम बोलने वाले कौन ? जाओ अपने रास्ते जाओ ।

क०—ज़रा होश में आओ मौत के मुँह में टाँगे डाले हुए होने पर भी इतना अत्याचार कर रहे हो । यह तुम्हारी सेवा करता है, तुम इसको वेतन स्वरूप में कुछ देकर इसकी

सहायता करते हो, तुम्हें इसको मारने का कोई भी अधिकार नहीं । ( नौकर में ) और तू बड़ा मूर्ख है जो इसकी इतनी मार खाने पर भी इससे दबा जाता है ।

सेवक—मेरा तो यह धर्म है ।

कलि०—क्या कहा धर्म है ? वह जीवन किस काम का जिसमें सुख न उठाया, वह सुख किस काम का जब शरीर में शक्ति न हो, वह शक्ति किस काम की जब तक कि हाथों में पैसा न हो, परमात्मा की कृपा से इस समय तेरे पास पैसा और शक्ति दोनों हैं । अगर तू सुख की प्राप्ति करना चाहता है तो ज़रासी शक्ति को काम में ला । इस बुद्धे को मार कर सदा के लिये निष्कण्टक हो जा ।

सेवक—क्या कहा मार कर ? ऐसा अधर्म ?

कलि०—अन्धे, इसमें अधर्म कैसा ? सदा ज़बरदस्त शक्ति अपने से छोटी शक्ति वाले को दबाना चाहती है । इस बुद्धे को देख, यह तुझको अपने से नीचा मानता है । बात बात में लकड़ियाँ तानता है । तो तू क्यों न ऐसे सुअवसर को काम में लाये ( छूरी निकाल कर देना ) ले इस छूरी से इसे ठिकाने लगा कर सदा चैन से बिता ।

सेवक—तुम ठीक तो कहते हो मगर फिर भी यह कर्म महा नीच है !

कलि०—क्या कहा ? कर्म नीच है ? अरे मूर्ख ! जब से तू ने होश सम्हाला है, सदा इसकी सेवकाई करने में बिता दी । इसके बदले में तुझे इसने खाने के लिये दो चार सूखी रोटियों के टुकड़े अथवा ये लाठियों की बौछारें दीं । अगर तेरे पास दौलत है तो यह देख ( परदा फटता है ) सामने सुख की नदियों का बौछार है ।

सेवक—अहा ! हा !! क्या वह सब प्राप्त हो सकते हैं ।

कलि०—अभी और इसी दम, मगर थोड़ी हिम्मत चाहिये । ले छूरी ले, बढ कर एक ही बार मैं इस बुड्ढे का काम तमाम कर हमेशा के लिये इस कंटक को हटा कर सुख से चैन कर ।

ले०— छूरी लेकर ) मगर हाथ काँपता है ।

कलि०—नामर्द ! जवान होकर, शक्तिवान् होकर इस तरह धरता है ? यह तेरे सुखका शत्रु है । इसे बोरों की तरह मार कर कंटक हटा ।

बुड्ढा—चान्दाल ! चलता है या नहीं ( मारने के लिये लाठी तानता है )

कलि०—बढ यही अच्छा मौका है । कलेजे में छूरी..... ।  
( सेवक झपट कर बुड्ढे के कलेजे में छूरी मार देता है और कपड़े की धेनी लेकर भाग जाता है । बुड्ढा तड़प कर मर जाता है । )

धर्म—बस करो कलियुग ! बस करो, अब और दृश्य न दिखलाओ । आँखों में शक्ति नहीं, कानों में सुनने की ताकत नहीं रही, संसार इतना असभ्य हो गया है, यह कभी स्वप्न में भी नहीं बिचारा था ।

कलि०—मगर आज अपनी आँखों से तो देख लिया । अभी क्या है, अभी तो इससे भी भीषण अत्याचार देखोगे और मौन रहोगे ।

धर्म—भगवान् ! यह कैसा संताप !

कलि०—सावधान ! यह है कलियुग और यह है उसका प्रताप ।

( परद्रा फटता है सामने पशुवध, अत्याचार इत्यादि हो रहे हैं । )

॥ टेबला ॥



गनेश का घर ।

( गनेश वो चमेली गाते आते हैं )

गाना ।

मोरे प्यारे, सैयां, हां दुलारे सैयां ।

ये दासी तुमपर है बलिहार न विसारना पड़ूँ पैयाँ ॥  
गनेश-तू चन्दा है मैं तारा तोपर तनमन बलहारा ।

घबड़ाना, दुःख पाना मुर्झाना-तेरे बिना ॥

चमेली-सुध बुध सब मोरी गैयां—मोरे—

गनेश—यही इच्छा गुहन से तुम्हे सीने से लपटाऊँ ।

निशाना बनके नैनों का तेरे बलिहार हो जाऊँ ॥

चमेली-चरण से है लगी दासी बनी चातक चकोरी है ।

तुम अमृत बूंद हो ये सेविका कोरी कटोरी है ।

भरके पिलाओ प्रेम रस इच्छा यहो मन की ॥

करूँ सेवा मैं प्रीतम को नहीं इच्छा रही धन की ॥मोरे०—

गनेश—प्यारी चमेली, दुलारी चमेली, जिस प्रकार चमेली का पुष्प अपने सुगन्ध से समस्त मुर्झाये हुये जीवों को मस्त बना देता है उसी प्रकार तुमने मेरे हृदय के कुम्हलाते हुये पीथे को अपनी सुख धारा से पहलवान बना दिया है ।

चमेली—यों नहीं यों कहिये कि जिस प्रकार देवता के चरणा-मृत से अधम से अधम मनुष्य तर जाता है उसी तरह आप



को दया से यह दासी जिसे आपके चरण की रज लगाने का भी अधिकार प्राप्त होना असम्भव था अब पवित्र हो गई है ।

गणेश—अजी यह सब प्रेम देवता की महिमा है जिसने हम दोनों को मिलाया और तुम्हारे पिता याने मेरे स्वसुर जी की कृपा है, कि जिन्होंने तुम्हें मेरी पत्नी और मुझे तुम्हारा पती बनाया ।

मूछ वो बालों की लट मिले लड़ गये हथियार से ।

सैकड़ों आये चढ़े पर डर गये ललकार से ॥

आये थानेदार वो सरदार सब बिल्ली बने ।

है विजय जयमाल पाया प्रेम के द्वार से ॥

( भोलानाथ का आना चमेली का भाग जाना )

भोला—प्रेम दंगल के पहलवान, पहिले अपने अन्त को कर पहचान तब इस स्त्री रूपिनी नटी को लजाने को कर आन ।

गणेश—कौन ? गुरुजी प्रणाम !

भोला—कल्याण बच्चा गणेश कल्याण ।

गणेश—गुरुजी अभी आपने नट नटी का क्या व्याख्यान कह सुनाया ? यह आपका वक्तव्य तो तनिक भी मेरी समझ में नहीं आया ।

भोला—बेटा, मेरे कहने का तात्पर्य यह है, कि मनुष्य का चोला बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है । उसे बृथा इन नट योनियों से न उलझना चाहिये मौत का डंका सिर पर बजा करता है । इस हेतु इस जीवन को किसी महान् आदर्श में लगाना चाहिये ।

गणेश—आपके कहने का तात्पर्य ?

भोला—तात्पर्य यही कि खीर खाने के बाद तू जीता है ।

गणेश—क्यों न जीता रहूँ गुरुजी आपके आशीर्वाद से

तुझे खीर खाते ही प्रेम की अनुपम कली मिल गई जिससे मेरे जीवन की ज्योति बिल गई ।

भोला—तो क्या तेरी प्रेमिका कुंवारी है ?

गणेश—कवारा नहीं अब तो पति वाली है ।

भोला—इसके पहिले ?

गणेश—इसके पहिले तो अवश्य कवारी रही होगी ।

भोला—रही होगी क्या तू निश्चय करके कहता है ?

गणेश—हाँ गुरुजी ! निश्चय करके कहता हूँ । अब आशीर्वाद दीजिये कि मेरा जीवन सुख से व्यतीत हो । यह मेरी अर्धांगिनी स्त्री समान प्रतीत हो ।

भोला—बेटा ! आशीर्वाद क्या दूँ ? थोड़ी देर बाद तुझे मृत्यु आलिंगन करेगा और यह पत्नी जिसके ऊपर तू इतना गर्व करता है किसी और आँखों के अन्धे को बरेगी ।

गणेश—हैं ! मृत्यु आलिंगन करेगी ? गुरुजी, अभी मैं नव-विवाहित हूँ, मृत्यु ऐसी कठोर धारणा क्यों अपने हृदय में धरेगी ?

भोला—कारण, तूने विष मिश्रित द्वारा खीर खाकर सम-राज को मेहमान बनाया है ।

गणेश—परन्तु वह खीर आप के ही आज्ञानुसार मैंने खाया है ।

भोला—बेटा क्या करूँ अपनी बला मैंने तेरे सिर डाल दी । तुझे वह विष खिला कर अपने सिर से मृत्यु की बला डाल दी ।

गणेश—( रोकर ) हाय मेरी नई जोरू—

छूटने पाई न लाली भी हमारे हाथ की ।

प्रेम की बाणी ने सुलभाया न डोरी नाथ की ॥

डुग डुगी बजने लगी यमराज के द्वार से ।

हाय जोरु चल बसा तेरा पिया संसार से ॥

( रोता है )

भोला—बेटा, धैर्य धर ।

गनेश—वाह गुरुजी ! आप तो अपनी जोरु के साथ अपनी काली मूर्त्तियों को सफेद बना चुके; कच्चा पका फल खा चुके और मैं, हाय अभी...

तोड़ने भी मैं न पाया प्रेम की डाली से फल ।

आप तिल्लाना सुनाते हैं कि चल यां से निकल ॥

अब कृपा कर कोई युक्ती आपही बतलाइये ।

मार डाला है तो जीवन दान भी दिलवाइये ॥

भोला—मैं क्या कर सकता हूँ । क्या बिष का प्रभाव बदल सकता है ? क्या वह तेरा प्राण लिये बगैर तेरे शरीर से निकल सकता है ?

गनेश—हाय २ ! अब मैं क्या करूँ ? गुरुजी ! मेरी जोरु हाथ... ( पेट पकड़ कर बैठता है )

भोला—हैं, गुरुजी तेरी जोरु ?

गनेश—( खड़ा होकर ) बस बिष चढ़ गया । बेटा गनेश तू मर गया, यमराज ले जा रहे हैं । हाय चमेली, तेरी महक सुंघाने के बदले मुझे यह धत्रे का सत्त सुंघा रहे हैं ।

भोला—हाय, बेचारा ।

गनेश—हाय मुझे बे मौत मार डाला । चलूँ दौड़कर गुरु धनवन्तरी के पास जाऊँ, अपने बिष उतारने का कोई प्रयोग उन्हीं से सीख आऊँ ।

( भाग जाता है )

भोला—हाय रे स्त्री ! तूने कैसी प्रचण्ड अग्नी हृदय में जला दिया; कि बिना धूआँ के दृष्टी आये सारा संसार स्वाहा हो रहा है । चलूँ बिचारे गणेश की दशा देखूँ क्या करता है । संसार वाले ध्यान करो, मेरा यह उपदेश ग्रहण करो ।

सेज मिले जो फूलसी त्याग तुरत ले टाट ।

बिना माँत मरना चहे तब स्त्री को चाट ॥

( जाता है )



## भयनक जंगल ।

( तत्त्व का घाना )

तत्त्व—जिस प्रकार महामारी या नर्क की यातना को ध्यान में लाते ही मनुष्य थर्रा उठते हैं, उसी प्रकार सर्प के नाम से समस्त प्राणी जन अकुला उठते हैं । काल की तुलना हमारे ही जाति से देते हैं । मगर माया में फंसे हुये उन निर्वोध प्राणियों को यह ज्ञान नहीं है, कि भाषी जिस समय, जिस घड़ी, जिस पल उनके कर्मानुसार उनका अन्त निर्णय करती है; उसी

रूप में वे अपने परिणाम को भोगते हैं। राजा परीक्षित ऐसा धर्मात्मा, जो धर्म के आगे अपने प्राणों की परवाह न करके स्वयं कलियुग से लड़ पड़ा था; आज तनिक सी भूल के कारण मेरे द्वारा डसा जाकर संसार से बिदा होने वाला है। तत्काल तुम्हारे लाख सोचने पर भी जो अपयश और कलंक का टीका तुम्हारे जाति पर लगा है, वह अमिट नहीं हो सकता। मैं आज अपनी महानशक्ति को उपयोग में लाकर भी ऐसे धर्मिष्ठ राजा को बचा नहीं सकता। हरद्वार के तीर पर हजारों सैनिकों की लपलपाती हुई तलवारें, राजा परीक्षित की रक्षा करने के लिये मेरे प्राणों को हनन करने में तत्पर हैं। इतना जानने पर भी मुझे वो करना ही पड़ेगा, जिसमें शृंगीश्रुषि का आप और परीक्षित के जीवन का अन्त पूर्ण हो। चलो कोई शुद्ध रूप धारण कर राजा के डसने का प्रयत्न करूँ।

( धनवन्तरी का आना )

धनवन्तरी—मगर ये ध्यान रहे, कि मारने वाले से बचाने वाले का पल्ला दृढ़ है।

त०—ब्राह्मण देवता, आप कौन ?

ध०—तत्काल, मैं धनवन्तरी वैद्य हूँ। सिन्धु मथन के समय मेरा भी जन्म हुआ है। अपने औषधि के प्रयोग के बल से मैंने करोड़ों जर्जरित वृद्ध कंकालों को पूर्णयुवा बना दिया। लाखों शृष्म श्रुतु से जलते हुये वृद्धों को हरा भरा करके बसन्त की लहलहाती हुई मन्द २ सुगन्धित वायु का सुख पहुँचाया है। लाखों सूखी हुई नदियों को स्वच्छ निर्मल जल से परिपूर्ण बनाया है। जिस प्रकार शूलपाणि नीलकण्ठ ने मारकण्डे को उचित समय पर गाल के मुख से बवाया था; उसी प्रकार मैं आज



राजा परीक्षित को बचाऊँगा । तुम अपना चमत्कार दिखाओ मैं अपना दिखाऊँगा ।

त०—आप में इतनी शक्ति है इसका प्रमाण ?

ध०—प्रमाण ! जिस प्रकार तुम चाहो अपने हृदय की शंका समाधान कर लो ।

त०—अच्छा यदि आप में इतनी शक्ति है तो वो जो सामने लहलहाता हुआ फल और फूलों से भरा हुआ वृक्ष है, उस पर मैं अपने बिष का प्रयोग चलाता हूँ; आप अपना चमत्कार दिखाइये । देखूँ आपका औषधियों पर कितना अधिकार है ।

ध०—मुझे सहर्ष स्वीकार है । ( तबक वृक्ष पर अपने फुफ्फुसों से बिष फेंकता है, पेड़ सूखकर लकड़ी का ठूठा हो जाता है ।

त०—आइये, वैद्य शिरोमणि ! अपना पराक्रम दिखाइये । ( धनवन्तरी अपने झोले में से औषधि निकाल कर पेड़ पर फेंकते हैं पेड़ धुनः हटा भरा हो जाता है; तबक घबराता है )

ध०—कहो नागराज ! सन्नाटे में क्यों आ गये, अपने महाबिष के तेज पूर्ण प्रभाव पर घमण्ड करनेवाले, ज़हरीले दांत खट्टे क्यों हो गये ? चलो, तुम अपना पराक्रम दिखाओ, मैं अपना पराक्रम दिखाता हूँ । मारने वाले से बचाने वाला छोटा है या बड़ा, यह तुम्हें अच्छी प्रकार से समझाता हूँ ।

त०—( स्वयं ) अजीब मामला है, तो क्या बिधिना की आज्ञा टल जायगी ! ऋषि का आप निष्फल होगा ? नहीं नहीं, अब इसे दूसरे ही प्रकार से समझाना चाहिये ।

ध०—नागराज ! चुप क्यों हो गये, जवाब दो ?

त०—धनवन्तरी जी ! मैं एक बात आपसे पूछता हूँ ।

ध०—वह क्या ?

त०—यदि किसी संयोग से आप की महौषधि ने राजा परीक्षित को जीवन दान दिया, तो क्या वह फिर नहीं मरेगा; सदा अमर रहेगा ?

ध०—ऐसा भी कहीं हो सकता है, जो इस संसार में आया है वह ज़रूर जायेगा ?

त०—आप बुद्धिमान होकर यह जानते हुये भी यदि अपने औषधियों पर अहंकार करके बिधिना की लेखनी टालने में अग्रसर हुये हैं, तो यह आपकी भारी भूल है। वैद्यराज ! विचारिये तो सही, स्वयं लक्ष्मीपति भगवान्, कृष्णावतार में हजारों राजसों, दुष्टों का संहार करने पर भी भावी की आज्ञा से एक अदने व्याध के हाथों से मरे थे, उस समय आप की औषधि ने क्या काम किया। सोलह वर्ष की अवस्था वाले युवा इसी राजा परीक्षित के पिता अभिमन्यू जब मृत्यु के मुख में प्रवेश कर गये, उस समय आपकी औषधि किस ओर शयन कर रही थी ? धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, चक्रवर्ती राजा दशरथ, पुत्र वियोग में तड़प २ कर मर गये, उस समय आपका चमत्कार, आपका प्रयोग, कहाँ चला गया था ?

ध०—वो बिधिना की गति थी, उसे कौन टाल सकता है।

त०—और यह बिधिना की गति नहीं ? धनवन्तरीजी ! थोड़ी देर सोचिये, अगर राजा परीक्षित की मृत्यु है तो आप क्या जिन्होंने आपको उत्पन्न किया है वह स्वयं त्रिलोकीनाथ भी नहीं बचा सकते। और यदि उसकी मृत्यु नहीं है, तो मैं क्या स्वयं काल देवता भी उसका बाल तक नहीं छिला सकते। हम आर्यों का यह कर्म है कि ऋषि वो ब्राह्मणों की आज्ञा

का पालन करें। राजा परीक्षित ने राजदम्भ के आधीन हो एक ऋषि का अपमान किया, उनके पुत्र ने अपने बल पर उनको श्राप दिया; क्या वो राजा परीक्षित से कम पूजनीय हैं, जो आप आज उनकी आज्ञा को असफल बनाने का प्रयत्न करने जा रहे हैं? ऋषि के नाम पर, हमारे धर्म की शैली पर और अपने चमत्कारिक औषधियों के प्रयोग पर कलंक का टीका लगा रहे हैं?

ब०—ठीक कहते हो। नागराज! ठीक कहते हो। जिस राज्याभिमान का दुरुपयोग कर राजा परीक्षित आज दण्ड का भागी हो रहा है, उसी अभिमान उसी गर्व के बृथा अहंकार के पाप में डूबने से आज मुझको तुमने बाल २ बचा लिया। मैं तुम्हारा आभारी हूँ।

त०—और मेरी बातें आपने इतनी जल्दी मान लिया, यह आपके विद्वत्ता का महान् चिन्ह है। वैद्यराज! ध्यान रखें।

यातनायें भोगनी जो हैं वो टल सकती नहीं।

ईश्वरेच्छा भी कभी भावी बदल सकती नहीं ॥

हो निपुण नाविक न हो तूफान, सागर शान्त हो।

कर्म लिखे के बिना पर नाव चल सकती नहीं ॥

ब०—उपकार, अनन्त उपकार, नागराज! अनन्त उपकार!! बस आज से इस घमंडी शीस को कर्मयोग में लगाऊँगा; अपने बचे हुये दिन को भगवान की स्तुति में बिताऊँगा।

( जाता है )

त०—चलूँ मैं भी ऋषि के आप को पूरा करूँ।

( जाता है )





## धनवन्तरी का गृह ।



( धनवन्तरी का विचारते हुये आना )

धन०—आज नागराज तक्षक ने हिये की आँखें खोल दी ।  
जिस घमण्ड पर मैं परमात्मा के विरुद्ध कार्य करने की  
उदगडता दिखाने जा रहा था, उसको अपने उपदेश से छोटे  
और खरे की पहचान का सच्चा मार्ग बतला दिया । ठीक है,  
एक दम ठीक है ।

जो बोलते थे बोलियाँ चढ़चढ़ के मुँह आ ।  
भोके में एक कर्म के मिलता नहीं पता ॥  
पत्ते हिले तो रह गये पर तौलते हुये ।  
खुटकी खुली तो उड़ गये "टैं" बोलते हुये ॥

( गणेश का घबड़ाये हुये आना )

गणेश—गुरुजी ! बचाइये, इस गरीब बलिदान के बकरे  
को भेंट चढ़ाने से बचाइये ।

धन०—क्या हुआ रे गणेश, आज इस प्रकार घबड़ाया  
हुआ क्यों है ?

गनेश—गुरु जी ! घबड़ाया क्यों हूँ ? हायरे मेरी चमेली तेरा होने वाला पति बिना मौत के मरने चला है, अब तू किसके नाम रोयेगी । ( रोता है )

धन०—अरे पागल, आज क्या हो गया है, जो इस प्रकार बेढंगी बातें बनाकर चिल्ला रहा है ? निष्प्रयोजन हल्ला मचा रहा है ।

गनेश—चिल्ला रहा हूँ, हल्ला मचा रहा रहा हूँ ? वाह गुरु जी, वाह ! कोई विलख रहा है पर आपको भैरवी की तान सुनाई पड़ती है, कोई बिभ्रवा हो रही है और आपको सुहाग की दान दिखलाई पड़ती है ।

( भोलानाथ का आना )

भोला—बचाइये, गुरु महाराज ! मुझे एक चाण्डालिन के हाथों से बचाइये । नहीं तो एक अनाथ आश्रयहीन चेला आज बिना मौत मर जायेगा ।

गनेश—यही है, गुरु महाराज ! मुझे काल के मुख में डालने वाला यमराज यही है ।

( चन्द्रकला का आना )

चन्द्र०—हैं ! स्वामी तो यहाँ खड़े हैं ।

भोला—वो देखिये गुरुदेव, मुझे अपने और पतियों की तरह मृत्यु के मुख में डालने वाली डाईन यही है ।

( चमेला वा कालीशंकर का आना )

गनेश—( चमेला से लिपट कर ) हाय प्यारी चमेली, तेरा यह होने वाला पति तेरा प्यारा, बिना मौत इस संसार से सिधारा ।

भोला—(कालीशंकर से लिपट कर) हायरे प्यारे मित्र, तुम्हारा यह भोला बिचारा, बिना निमन्त्रण पाये संसार से सिधारा ।

धनवन्तरी--हैं ! तुम सबने क्या आज कोई बूटो पीलो है, जिससे सबके सब पागल हो रहे हो, निष्प्रयोजन बिना मतलब की बात कह रहे हो ?

भोला--गुरुजी ! सुनिये मैं कहता हूँ ।

गणेश--गुरु जी ! पहिले मेरा जहर उतारिये, तब इनकी बातें सुनिये । हाय प्यारी ! चमेली ( रोता है )

धन०--गणेश, न घबड़ा । अगर भगवान की दया होगी तो एक जहर क्या महाभयानक बिष भी तेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता । ( भोला से ) अच्छा भोलानाथ, यह क्या रहस्य है साफ साफ बतलाओ ।

भोला--गुरुजी ! साफ बात यह है, कि यह जो मेरी स्त्री है वह डार्इन है । इसने मेरे पहले पाँच पतियों की हत्या, भोजन में बिष मिलाकर कर डाली है ।

चन्द्र०--पाँच पतियों की हत्या प्राणनाथ.....

भोला--चुप रह चाण्डालिन कहीं की, मुझे बात पूरी कर लेने दे । हाँ तो गुरुजी ! जब से मैंने यह सुना तबसे इसके हाथों का भोजन, क्या जल भी नहीं छूता । आज जब इसने मुझे भोजन करने के लिये विवश किया तो मैंने अपना भोजन गणेश को खिला दिया । क्योंकि मैं जानता था, कि उसमें बिष मिला था ।

गणेश --(चिल्लाकर) हायरे मेरी होने वाली प्यारी चमेली ! ( रोता है )

धन०--गणेश बावला न बन । हाँ तो भोलानाथ, तुमसे यह किसने कहा, कि तुम्हारी स्त्री ने पाँच पतियों की हत्या कर डाली है ?

भोला—मेरे परम मित्र, मेरे महान् शुभचिन्तक यह काली शंकरजी ।

काली०—हैं ! मैंने कब कहा ?

भोला—आज प्रातःकाल ।

काली०—( हँसकर ) हा हा हा । मित्र ! तुम बड़े मूर्ख हो । अरे मैंने तो तुमको एक पुस्तक की कहानी बतलाई थी; न कि तुम्हारी धर्मपत्नी पर ऐसी लज्जा पूर्ण बातें घटाई थी ।

भोला—तो क्या वह कोई गल्प था ।

काली०—और नहीं तो क्या कोई सच्ची बात थी ।

धन०—भोलानाथ ! तू इतनी विद्या पढ़ने पर भी मूर्ख ही रहा । मूर्ख, इस प्रकार संशय का शिकार हो गया, कि अपना पराया भी भूल गया । ठीक है बाबा ठीक है ।

लाख हो सामान प्रज्वलित का सभी बेकार है ।

कर्म के लिक्खे बिना तिनका जले दुश्वार है ॥

गणेश—तो क्या मैं ने विष नहीं खाया ?

काली०—अरे विष था ही कहाँ जो तूने खाया । तेरे भाग्य में खटुरस भोजन था, जिसने तेरा पेट कुप्पा बनाया । और मेरे भोलानाथ को सोलहोदण्ड एकादशी का निर्जला व्रत कराया ।

गणेश—वाह २ । तब तो मैं अपनी प्यारी चमेली का पति मर कर जिन्दा हो गया ।

भोला—और प्यारी चन्द्रकला तुम्हारे सामने यह भोलानाथ शरमिन्दा हो गया ।

धन०—अस्तु, जो होना था सों हुआ । इस बहम वो

संशय को आग लगाओ, अब जैसे पहिले थे वैसे हो रहकर  
प्रसन्नता मनाओ । और याद रखो—

लिखा है भाग्य में जो कुछ वही कर्तब तुम्हारा है ।

न कोई शत्रु है अपना न प्यारी है न प्यारा है ॥

गणेश—हँस रहो किस्मत मेरी रोती हुई ।

लो कफन कोहबर की अब धोती हुई ॥

भोला—भाग जागे हैं मेरे सोये हुये ।

मिल गई लक्ष्मी जो थे खोये हुये ॥

काली०—वहम को दूर करके काम जो हरबार करते हैं ।

उन्हें सब जीव क्या भगवान तक भी प्यार करते हैं ॥

( सबका जाना )



## हरद्वार का किनारा ।

( शुकदेवजी राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत का अन्तिम श्लोक  
सुनाकर पुष्प आशीस देते हैं । )

शुकदेवजी—राजा परीक्षित ! आज तुम्हारे आप का  
अन्तिम दिन है । उन परब्रह्मस्वरूप परमात्मा की दया से

श्रीमद्भागवत सानन्द सम्पूर्ण हो गया। अब तुम समस्त माया के बन्धनों को त्याग कर हरिचरण में ध्यान लगाओ। और अन्त गति को प्राप्त कर श्रीभगवान के चरणों में लिप्त हो जाओ।

परी०—( हाथ जोड़ कर ) हे मुनिनाथ ! आपने मेरा सन्देह छुड़ाकर ज्ञान रूपी डोर थमा कर इस भवसागर से पार उतरने का मार्ग बता दिया। अतः अब मुझे किसी बात का भय नहीं रहा।

शुक०—( फूल देते हुये ) राजन् ! इसे सुँघो और शिर चढ़ाओ। भगवान की कृपा से तुम मोक्ष पद को प्राप्त होगे।

परी०—जो आज्ञा। (परीक्षित फूल सूँघते हैं, तत्काल जो कोड़े के रूप में फूल में छिपा हुआ है, अपना रूप प्रगट करके राजा को डसता है। परीक्षित गिरकर मरते हैं। रानी दौड़कर आती है, और परीक्षित का शव अपने गोदो में रखकर सती तेज से परीक्षित सहित भस्म हो जाती हैं। जन्मेजय इत्यादि रुदन करते हैं। पीछे का पर्दा फटता है। स्वर्ग में पाँचो पांडव अभिमन्यू परीक्षित और उनकी आत्मायें भगवान के चरणों में लीन हो जाती हैं। )

द्राप सीन



# थियेट्रिकल-नाटकमाला

|                  |      |                 |      |
|------------------|------|-----------------|------|
| ध्रुवलीला        | ।।।) | भक्त सुदामा     | १)   |
| परीक्षित         | १)   | गौतम बुद्ध      | १)   |
| सत्यविजय         | ।।।) | तेगे सितम       | ।।।) |
| काशी विश्वनाथ    | ।।।) | देशोद्धार       | ॥)   |
| धर्मोजय ।।।)     | १)   | भीष्म प्रतिज्ञा | ।।।) |
| सती सुकन्या      | ।।।) | मोराबाई         | ॥)   |
| कलियुग की सती    | ।।।) | औरंगजेब         | ॥)   |
| गरीब किसान       | ।।।) | सती अनुसूया     | ॥)   |
| आजादी या मौत     | ।।।) | संग्रामसिंह     | ।।।) |
| संसार चक्र       | ।।।) | बालकृष्ण        | ॥)   |
| देशदशा           | ।।।) | परशुराम         | ।।।) |
| दानी कर्ण        | ॥)   | मदिरादेवी       | ॥=)  |
| बर्मयोगी         | ।।।) | रामायण          | ।।।) |
| भारतवर्ष         | ।।।) | विश्वामित्र     | ।।।) |
| तुलसीदास         | ॥=)  | म० कबीर         | १)   |
| नलदमयन्ती        | ।।।) | महाभारत         | ॥)   |
| पत्नीव्रत        | ।।।) | सूरदास          | ॥)   |
| सावित्री सत्यवान | ।।।) | सत्यहरिश्चन्द्र | ॥)   |
| द्रौपदी स्वयम्बर | ॥)   | रामलीला         | ॥)   |
| कलियुग           | ॥=)  | गोपीचन्द्र      | ॥)   |
| हिन्दूतलना       | ।।।) | विश्वमंगल       | ॥)   |
| भारतदशा          | ।।।) | भारतरमणी        | ।।।) |
| हिन्दू की गाय    | ॥)   | भक्त विदुर      | ॥)   |
| स्रोता बनवास     | ।।।) | काली नागिन      | ॥=)  |
| श्रीमती मंजरी    | ॥=)  | शरीफ बदमाश      | ॥=)  |
| शकुन्तला         | ।।।) | ख्वाबे हस्ती    | ॥=)  |
| सती सुलोचना      | ।।।) | खून क खून       | ॥=)  |

|                        |     |                  |              |
|------------------------|-----|------------------|--------------|
| हिन्दू स्त्री          | ॥१॥ | असीरेहिर्स       | ॥२॥          |
| सौभाग्य सुन्दरी        | ॥१॥ | सैदे हवस         | ॥३॥          |
| अजामिल उद्धार          | ॥१॥ | यहूदी की लड़की   | ॥१॥          |
| विक्रम खरित्र          | ॥२॥ | खने नाहक         | ॥२॥          |
| चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त  | ॥२॥ | खूबसूरत बला      | ॥१॥          |
| सम्राट अशोक            | ॥१॥ | जहरी साँप        | ॥३॥          |
| बीर बाला               | ॥१॥ | दुश्मने ईमान     | ॥२॥          |
| सतीलोला                | ॥१॥ | गोरखचन्दा        | ॥१॥          |
| शिव पार्वती            | ॥१॥ | भूल भुलइयाँ      | ॥२॥          |
| दुखिया भारत            | ॥१॥ | शहीदेनाज         | ॥२॥          |
| वीर छत्रसाल            | ॥१॥ | सफेदखून          | ॥२॥          |
| आँखों का गुनाह         | ॥१॥ | ठंडी आग          | ॥१॥          |
| अत्याचार               | ॥१॥ | आतशीनाग          | ॥१॥          |
| ऊषा अनिरुद्ध           | ॥१॥ | चिरागे चीन       | ॥१॥          |
| संगीत थियेटर           | ॥१॥ | चलता पुर्जा      | ॥२॥          |
| रागिनी थियेटर          | ॥१॥ | वगलाभगत          | ॥१॥          |
| कर्मवीर चण्ड           | ॥१॥ | हुवेवतन          | ॥१॥          |
| एक प्याला ( यंत्रस्थ ) |     | मशहूर गवैया      | ॥१॥          |
| राधा माधव              | ॥१॥ | बहारे थियेटर     |              |
| शाहीफरमान              | ॥१॥ | भाग १ ला         | ॥१॥          |
| तू कौन                 | ॥१॥ | दूसरा            | ॥१॥          |
| मातृभक्ति              | ॥१॥ | तीसरा            | ॥१॥          |
| नाट्य चित्रावली        | ॥१॥ | भक्त प्रह्लाद    | ॥१॥          |
| घनुधर अर्जुन           | ॥१॥ | गंगावतरण         | ॥१॥          |
| देहाती महिला           | ॥१॥ | यहूदी की लड़की   | ॥१॥          |
| संतान विक्रय           | ॥१॥ | स्वार्थ की पुतली | ( यंत्रस्थ ) |
| अहंकार                 | ॥१॥ | परिवर्तन         |              |
| स्त्रीसाम्राज्य        | ॥१॥ | रामरहाम          |              |
| नन्दकुमार              | ॥१॥ | सतीसारंधा        |              |

पता-शिवरामदासगुप्त, उपन्यास-बहार आफिस बनारस काशी ।

# अगर आप

सचित्र थियेट्रिकल नाटकमाला की उत्तमोत्तम शिक्षाप्रद दिलका  
हिला देनेवाले अस्ली नाटकों का आनन्द लेना चाहते हैं तो  
निम्नलिखित सचित्र नाटक अवश्य पढ़ें ।

|                     |                          |                     |
|---------------------|--------------------------|---------------------|
| भक्त सुशामा         | १) आँखों का गुनाह ॥)     | सीता बनवास ॥)       |
| गौतमबुद्ध ॥)        | १) भारत रमणी ॥)          | कलियुगकी सती ॥)     |
| ध्रुव लीला ॥)       | १) महात्मा कशीर १)       | संसारचक्र ॥)        |
| परोक्षित            | १) सावित्री सत्यवान ॥)   | मीराबाई ॥)          |
| अत्याचार            | ॥)                       | नल दमयन्ती ॥)       |
| कृष्णलीला           | १) पत्नीव्रत ॥)          | सौभाग्यसुन्दरी ॥)   |
| सम्राट अशोक ॥)      | देशदशा ॥)                | विल्वमंगल ॥)        |
| वीर छत्रसाल ॥)      | सत्य विजय ॥)             | आजादी या मौत ॥)     |
| मातृ-भक्ति ॥)       | गरोब किसान ॥)            | हिन्दू लालना ॥)     |
| पंजाब केशरी ॥)      | धर्मयोगी ॥)              | सतीलीला ॥)          |
| अजामिल उद्धार ॥)    | बालरत्न भोज ॥)           | शकुन्तला ॥)         |
| वीरचंडचूड़ामणि ॥)   | चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त ॥) | बालकृष्ण ॥)         |
| एकप्याला (यंत्रस्थ) | अहंकार (यंत्रस्थ)        | परिवर्तन (यंत्रस्थ) |

ये ३६ पुस्तकें बड़ी ही दिलचस्प, दिल दहलानेवाली ओ-  
जस्विनी भाषा में मंचयोग्य लिखी गई हैं । इनके पढ़ते ही  
आपके रोंगटे खड़े हो जायेंगे, हृदय लहालोट होकर अभिनय  
देखने के लिये बेकरार हो उठेगा । रंगविरंगे चित्रों से सुस-  
ज्जित, सुन्दर छपाई, बढ़िया कागज़ देख आप इन्हें छाती से  
लगा लेंगे । विशेष प्रशंसा करना व्यर्थ है ।

पता—उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस ।

# कामिकल सीरीज्।

६ के ६

सर्वोत्तम लोकप्रिय शिक्षाप्रद प्रहसन ।

|                  |                               |    |
|------------------|-------------------------------|----|
| नई रोशनी         | ॥) जोरू का गुलाम ( यंत्रस्थ ) |    |
| डुप्लीकेट        | ।=) एकशा नम्बर वन्            | ”  |
| कंजूस की खोपड़ी  | ॥) विजिटिंग कार्ड             | ”  |
| स्वामी जटानन्द   | ।) नाक में दम                 | ।) |
| वेटिंग रुम       | ≡) फैशन की मार                | ”  |
| डबल जोरू         | ≡) खान्दानी डाकूर             | ”  |
| हरिश्चोम् तत्सत् | ।) करेन्सी नोट                | ”  |
| खुशामदी टट्टू    | ।) बड़े बाप की बेटी           | ”  |
| दुमदार सितारा    | ।) काठ का डल्लू               | ।) |
| घोटाळा पर घोटाळा | ।) पौराणिक की शंका            | ”  |
| सटक सीताराम      | ।) नीम जन्टिलमैन              | ”  |
| भण्डाफोड़        | ।) गोबरगनेश                   | ”  |
| चौपटानन्द        | ।) गड़बड़ घोटाळा              | ≡) |
| सोडे की बोतल     | ।) मर्दमार औरत                | ।) |
| सम्पादक की दुम   | ।) बुढ़ापे की हवस             | ।) |
| हकीम हकनाहक      | ।) धौघाबसन्त                  | ।) |
| मूर्खानन्द       | ।) उल्लू की दुम               | ”  |
| गुरु घन्टाल      | ।) लबड़धौधौ                   | ”  |
| धोखे की टट्टी    | धमाचौकड़ी                     | ”  |

पंता-शिवरामदास गुप्त, उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस ।









